हिन्दी नावेल, अङ्क १०, नवम्बर १९२८

इन्दिरा ।

सेवक—
जौहर लिखित ।

इन्दिरा ।

बङ्गालके अमर लेखक बङ्किमचन्द्रकृत
बंगला 'इन्दिरा'के आधारपर
एन० के० जौहर द्वारा लिखित ।

काशी

साखूगञ्जके हिन्दी-प्रेसमें एन०
के० जौहर द्वारा मुद्रित
और प्रकाशित ।

निवेदन ।

इन्दिरा अङ्गरेजीसे नहीं ; बंगलासे अनुवाद की गई है। स्थिर यही किया गया था, कि 'हिन्दी नावेल'में जो नावेल निकलेंगे ; वह सब अङ्गरेजीके ही अनुवाद होंगे। इस व्यवस्थाका अतिक्रम कुछ कृपालु मित्रोंके सविशेष अनुरोधके कारण हुआ है। आशा है, कि उदार पाठक इसे दोषके रूपमें ग्रहण न करेंगे। आगामी माससे फिर अङ्गरेजी नावेलों हीके आधारपर लिखे हुए नावेल निकला करेंगे।

निवेदक,—**मैनेजर ।**

इन्दिरा।

पहला बयान।

बुलावा।

बहुत दिनोंके बाद मैं सुसराल जा रही थी। मुझे उन्नीसवाँ साल लगा था; फिर भी, अबतक मैं सुसराल न गई थी। क्योंकि मेरे पिता धनी थे। ससुरने मुझे बुलानेके लिये एकबार आदमी भेजा था; लेकिन पिताजीने बिदा न किया;—कहला भेजा; समधीजीसे कहना, कि पहले मेरा दामाद कमाना सीखे—इसके बाद बहू बुलाये—अभी मेरी लड़कीको ले जाके खिलायेगा क्या? यह सुनके मेरे पतिके मनमें घृणा हुई। उस समय उनकी उम्र कोई बीस सालकी थी। उनके मनमें ठन गई, कि वह खुद रुपये पैदा करनेपर ही मेरा मुंह देखेंगे। इसी इरादेसे वह विदेश निकल गये। उस समय रेल न थी। परदेश करना बड़ा ही कठिन था। वह बिना रुपये-पैसेके पैदल पञ्जाब पहुंचे। जो इतना कर सकता है, वह रुपये भी कमा सकता है। मेरे पति रुपये कमाने लगे। घर रुपये भेजने लगे; लेकिन सात-आठ सालतक न तो घर आये और न उन्होंने मेरी कुछ खबर ही ली। क्रोधसे मेरा शरीर थर्रा उठता था। कितने रुपयेकी जरूरत थी? मैं अपने माता-पितापर भी नाराज होती थी। आग लगे, उनके रुपये-पैसेके

झिझको। क्या रुपये मेरे सुखसे बढ़के थे? मेरे बापके घर बहुत रुपये हैं। मैं रुपये होसे खेला करती थी। मनमें आता था, कि एक दिन रुपये बिछाके सोऊंगी; देखूं कैसा सुख मिलता है। एक दिन मैंने अपनी मासे कहा भी,—"अम्मा! मैं रुपये बिछाके उसीपर सोया चाहती हूं।" माने जवाब दिया,—"पगली कहींकी?" फिर भी; वह मेरा मतलब समझ गईं। यह नहीं जानती, कि वह कौनसी चाल चलीं; लेकिन जिस समयका हाल मैं कह रही हूं, उससे कुछ पहले मेरे पति अपने घर लौटे थे। मशहूर हुआ, कि वह कमसरियटके कामसे बहुतसा धन कमा लाये हैं। मेरे ससुरने मेरे पिताको लिख भेजा, कि आपके आशीर्वादसे उपेन्द्र बहूका पालन करने लायक हो गया है। पालकी-कहार भेजता हूं, बहूको यहां भेज दीजिये। नहीं तो मैं लड़केकी दूसरी शादी करूंगा।

पिताजीने देखा, कि ठाट-बाट बड़ेआदमियों ही जैसा है। पालकीके अन्दर कमख्वाब मढ़ा है; ऊपर चांदीका पत्र लगा है; डण्डेमें चांदीका मगर बना है। जो दासी बिदा कराने आई था, वह रेशमी साड़ी पहने थी; गलेमें मोटासा सोनेका कण्ठा भी पहने था। चार काले दढ़ियल भोजपुरिये पालकीके साथ आये थे।

मेरे पिता हरमोहन दत्त खानदानी बड़ेआदमी हैं; उन्होंने हसके कहा,—"बेटी इन्दरी! अब मैं तुम्हें राक नहीं सकता। अभी जाओ; जल्द हा फिर बुलवा लूंगा।"

मैंने मन ही मन पिताजीकी बातका जवाब दिया,—"अभी जाऊं तो सही; बुलानेकी इतनी जल्दी क्या है?"

मेरी छोटी बहन कामिनी शायद इस बातको समझ गई थी। वह बोल उठी,—"बहन! अब कब आओगी?" मैंने उसका गाल

मल दिया । कामिनीने पूछा,—"बहन ! जानती हो सुसराल कैसी होती है ?"

मैंने कहा,—"जानती हूं। वह नन्दनवन है ; वहां रतिपति पारिजातके फूलोंके बाण मारके लोगोंका जन्म सार्थक किया करते हैं । वहां पैर रखते ही स्त्रीजाति अप्सरा बन जाती है। वहां सदा कोयल कूका करती है ; जाड़ोंमें दखिनी हवा चलती ; अमावसके दिन भी पूरा चांद निकलता है ।"

कामिनीने हंसके कहा,—"अभीसे यह हाल ! आग लगे तुम्हारी इस बेशर्मीको !"

दूसरा बयान ।

यात्रा ।

बहनका यह आशीर्वाद लेके मैं सुसराल चली। मेरी सुसराल मनोहरपुरमें थी । मेरे पिताका घर महेशपुरमें । दोनो गांवोंमें दस कोसका फासिला था । सफर लम्बा था ; इसलिये सवेरे ही खा-पीके चली थी ; जानती थी, कि सुसराल पहुंचते-पहुंचते कुछ रात हो जायेगी ।

इसीसे आंखोंमें कुछ आंसू आ गये । रातको मैं अच्छी तरह यह देख न सकूंगी, कि वह कैसे हैं ; वह भी यह देख न सकेंगे, कि मैं कैसी हूं । माने बड़ी मिहनतसे चोटी कर दी थी । दस कोसकी राह जाते-जाते जूड़ा खिसक जायेगा, बाल छितरा जायगे । पालकीके अन्दर पसीनेसे शराबोर होके बदसूरत बन जाऊंगी । प्याससे पानकी धड़ी सूख जायेगी ; थकावटसे देह मुर्झा जायेगी ।

तुमलोग हंसते हो? लेकिन इसमें हंसीकी कौनसी बात है? मैं भरे यौवनमें पहले-पहल सुसराल जा रही थी।

राहमें काला ताल नामका एक बहुत बड़ा ताल था। उसका पानी कोई आध कोसके घेरेमें फैला हुआ था। किनारा पहाड़की तरह ऊंचा था। किनारे और पानीके बीचसे रास्ता था। किनारे चारों ओर बरगद्के पेड़ थे। छाया ठण्डी थी। झीलका पानी नीले बादल जैसा था। दिखाव बड़ा ही सुन्दर था। उधरसे बहुत कम लोग आते-जाते थे। तालके घाटके ऊपर एक ही दूकान थी। पासके गांवका नाम काला गांव था।

तालकिनारे लोग अकेले जानेको हिम्मत न करते थे। डाकुओंका डर था। इसीसे लोग उसे डाकुओंका काला ताल कहा करते थे। दूकानदारको लोग डाकुओंका मददगार समझते थे। मुझे डाकुओंका डर न था। मेरे साथ बहुतेरे आदमी थे;—सोलह कहार, चार सिपाही और बहुतेरे आदमी। जब हम सब उस तालाबके किनारे पहुंचे, तब ढाई पहर दिन बीत चुका था। कहारोंने कहा,—"हमलोग बिना खाये-पिये अब आगे बढ़ नहीं सकते।" सिपाहियोंने मना किया,—"नहीं; यह जगह अच्छी नहीं।" कहारोंने जवाब दिया,—"हमलोग इतने आदमी हैं, डर काहेका है?" सिपाहियोंने भी अभी कुछ खाया-पिया न था; आखिरकार उनलोगोंने भी कहारोंकी रायमें राय मिला दी।

ताल किनारेके एक बरगद्के नीचे मेरी पालकी उतार दी गई। मेरा जी जल गया। कहां तो मैं देवी-देवता मना रही थी, कि जल्द पहुंचूं—कहां कहार गर्दन उठाके मैले अंगोछे घुमा-घुमाके अपनेको हवा कर रहे थे। लेकिन छिः! स्त्री-जाति बड़ी ही मतलबी होती है! मैं सवारीपर जा रही थी; वह बेचारे सवारी ले जा रहे थे। मैं जा रही थी भरे यौवनमें पतिका दर्शन करने,

वह सब आते थे, पेटके लिये एक मुट्ठी अन्न जुटाने। उनके हवा खानेपर मैं जल गई? धिक्कार है, मेरी ऐसी भरी जवानीपर!

यही सोचते-सोचते कुछ देर बाद आहटसे मुझे जान पड़ा, कि मेरे साथी दूर हट गये थे। तब मैंने हिम्मतसे पालकीका पट जरासा हटाके तालको देखना शुरू किया। देखा, कि कहार दूकानके सामने एक बरगदके नीचे बैठे कुछ खा-पी रहे थे। वह सब मुझसे कोई डेढ़ बीघेकी दूरीपर थे। यह भी देखा, कि सामने बहुत बड़े बादलकी तरह ताल फैला हुआ था। चारो ओर ऊंचे और कोमल हरे-भरे पेड़ोंसे शोभित करारा था;—करारे और पानीके बीचकी बहुत बड़ी जमीनमें बरगदके पेड़ोंकी कतार थी। करारेपर कितने ही बछड़े चर रहे थे। पानीमें पानीके पक्षी किलोल कर रहे थे। मन्द-मन्द लहरोंकी थपकियोंसे सन्नाटा दूर हो रहा था। शायद छोटी-छोटी लहरोंकी अठखेलियोंसे पानीके फूल-पत्ते और सेवार हिल रहे थे। देखा, कि मेरे सिपाही पानीमें उतरके नहा रहे थे। उनके हिलने-डोलनेसे नीले पानीपर मानो सफेद मोती छिटक रहे थे।

मैंने आकाशकी ओर निगाह की। कैसा सुन्दर नीलापन था? कैसी सुन्दर और प्यारी सफेद बादलोंकी तहें थीं। दोनो ही रङ्गमें विचित्रता थी। आकाशमें उड़ते हुए पक्षी नीले रङ्गपर काली बूंदियोंजैसी शोभा दे रहे थे। मनमें आया, कि क्या ऐसी कोई विद्या नहीं, जिससे आदमी पक्षी बन सके? पक्षी होती, तो मैं अभी उड़के प्रियतमके पास पहुंच जाती।

फिर तालकी तरफ निगाह फेरी। देखके डरी। अलावा कहारोंके हमारे साथके सभी लोग एक साथ नहा रहे थे। साथकी मजदूरनियां—एक सुसरालकी और एक बापके घरकी दोनो ही

पानीमें उतर पड़ी थीं। मुझे कुछ डर जान पड़ा। पासमें कोई नहीं—जगह खराब; मेरे साथियोंने मुझे छोड़के अच्छा नहीं किया। लेकिन करती क्या? मैं बहू थी। मुंह खोलके ऊंचा आवाजसे किसीको बुला भी न सकती थी।

ऐसे समय पालकीके पीछे कोई आवाज हुई। मानो बरगदकी डालसे कोई चीज भद्से टपक पड़ी। मैंने पीछेका पट खिसकाके देखा, कि वहां डरावनी सूरतका एक काला आदमी खड़ा था। मैंने मारे डरके पट बन्द कर लिया। लेकिन एकाएक खयाल आया, कि इस समय पट खोल रखना ही मुनासिब है। मेरे फिर पट खोलनेसे पहले ही और एक आदमी पेड़से कूदा। देखते-देखते एक और, फिर एक और। इसतरह एक साथ चार आदमी पेड़से कूदे और इसके बाद ही मेरी पालकी कन्धेपर उठाके एक ओर भागे।

यह देखके मेरे साथी सिपाही "कौन है रे! धर सारेनका। पकड़-पकड़!" कहते हुए पानीसे निकलके झपटे।

अब समझी, कि मैं डाकुओंके हाथ पड़ गई थी। अब लज्जा कैसी? मैंने पालकीके दोनो पट खोल दिये। पालकीसे कूदके भागनेका भी इरादा किया, लेकिन देखा, कि मेरे साथके लोग खूब शोर मचाते हुए पीछे दौड़े चले आते हैं। इससे कुछ भरोसा हुआ। लेकिन वह भरोसा भी जाता रहा। आस-पासके पेड़ोंसे बहुतेरे डाकू कूदे। मैं कही चुकी हूं, कि पानीके किनारे बरगदके पेड़ोंकी कतार थी। जिस पेड़के नीचेसे डाकू पालकी ले जाते थे, उसी पेड़से आदमी कूदते थे। इनमें किसीके हाथ मोटा लट्ठ और किसीके हाथ पेड़की डाल थी।

अधिक डाकुओंको देखके मेरे साथके आदमी पिछड़ने लगे। तब मैंने बहुत ही निराश होके विचार किया, कि पालकीसे कूद पड़ूं;

लेकिन डाकू इतनी तेजीसे पालकी लिये जा रहे थे, कि कूदनेसे चोट आनेका डर था। एक डाकूने लाठी तानके कहा भी,—"कूदेगी तो सर तोड़ दूंगा।" मैं कूदनेसे बाज आई। मैंने देखा, कि मेरे साथी एक सिपाहीने आगे बढ़के पालकी पकड़ी। साथ ही एक डाकूने उसपर लठ जमाया। वह बेहोश होके जमीनपर गिरा। उसे मैंने फिर उठते न देखा। शायद वह फिर उठा भी नहीं।

यह देखके बाकी सिपाही जहांके तहां रह गये। डाकू निडर हुए और मुझे लेके चल दिये। रात एक पहरतक इसीतरह चलनेके बाद उन सबने पालकी रख दी। जहां पालकी उतारी गई, वह एक घना जङ्गल था। चारो ओर अंधेरा। डाकुओंने एक मशाल जलाया। तब एकने मुझसे कहा,—"तुम्हारे पास जो कुछ है, रख दो; नहीं तो मैं जानसे मार डालूंगा।" मैंने अपने गहने-कपड़े दे दिये। शरीरपरके गहने भी उतार दिये। सिर्फ हाथका कड़ा नहीं उतारा। उसे भी उन सबने उतरवा लिया। उन सबने एक मैली-पुरानी धोती दी, उसे पहनके मैंने अपनी कीमती साड़ी उतार दी। डाकुओंने मेरा सब छीननेके बाद पालकी तोड़के चांदीका पत्र उतार लिया। आखिर उन सबने टूटी पालकीको आग लगा डकैतीका निशानतक जलाके मिटा दिया।

इसके बाद वह सब भी चल दिये। उस घने जङ्गल और अंधेरी रातमें अपनेको जङ्गली जानवरोंके मुंहमें देखके मैं रो उठी। मैंने कहा,—"तुम्हारे पैर पड़ती हूं; हाथ जोड़ती हूं; मुझे साथ लिये चलो।" डाकुओंका साथ भी मुझे उस समय अच्छा जान पड़ा।

एक बूढ़े डाकूने दयासे कहा,—"बेटी! तेरीजैसी गोरी-चिट्टी लड़कीको लेके हम कहां जायेंगे? अभी इस डाकेके

शुहरत होगी, तब तुम्हारीजैसी लड़कीको साथ देखते ही लोग हमें पकड़ लगे।"

एक जवान डाकूने कहा,—"ऐसी औरतके लिये जेल जाना भी मञ्जूर है। चल तू मेरे साथ।" उसने और जो कुछ कहा, उसे लिख नहीं सकती। वैसा मैं कभी सोच भी नहीं सकती। वह बूढ़ा इस दलका सर्दार था। उसने उस जवानको लठ दिखाके कहा,—"एक ही चोटमें खोपड़ी चकनाचूर कर दूंगा। खबरदार! जो इस लड़कीपर आंख भी उठाई?" वह सबके सब चले गये।

तीसरा बयान।

सुसराल जानेका सुख।

क्या कभी ऐसा भी होता है? इतनी आफत; इतनी मुसीबत; कभी किसी बहूपर आई है? कहां मैं पहले-पहल पतिके दर्शनको जाती थी। सारे अङ्गमें जेवर पहनके, बड़े शौकसे सर गुंथवाके, पानकी धड़ीसे अनूठे होंटोंको रंगके, खुशबूसे क्वांरेपनका खिली हुई देहको बसाके,इस उन्नीसवे बरसमें मैं पहले-पहल पतिके दर्शनको चली थी; यही सोचती जाती थी, कि क्या कहके इस कीमती जवाहरातको उनके चरणोंपर निछावर करूंगी,—इतनेमे एकाएक यह कैसा वज्र टूट पड़ा? सब जेवर छिन गये,—छिन जायें; पुरानी मैली बदबूदार धोती पहनाई गई—पहनाई जाये; शेर-भालुओंके मुंहमें छोड़ी गई—छोड़ी जाऊं; भूख और प्याससे जान निकली जाती थी—निकल जाये; जीना नहीं चाहती, इस समय मरना ही अच्छा है,—लेकिन अगर जान न निकली, अगर बच गई, तो कहां जाऊंगी? उनके दर्शन तो हो न सके। शायद

मा-बापको भी देख न सकूंगी। रोनेसे भी रोना खतम नहीं होता।

इसीसे मैंने सोच लिया, कि रोऊंगी नहीं। आंखके आंसू किसी तरह रुकते ही न थे, तब भी रोकनेकी कोशिश कर रही थी। ऐसे समय दूरसे एक भयानक गरज सुनाई दी। समझी, कि शेर है। मन कुछ खुश हुआ। शेर खा जायेगा, तो सारा दुःख दूर हो जायेगा। हड्डियां तोड़-तोड़के खून पियेगा; सोच लिया, कि वह भी सह लूंगी,—शरीर हीकी तकलीफ न। मर सकूं, तो उसमें भी सुख है। इसलिये रोना छोड़के कुछ खुश हुई। लगी बैठके शेरकी राह देखने। पत्तेकी खरखराहट सुनके सोचती थी, कि सब तकलीफोंको मिटानेवाला शेर आया ही चाहता था। लेकिन बहुत रात बीत जानेपर भी वह न आया। मैं निराश हुई। खयाल आया, कि झाड़ियों और घनी घासमें सांप रह सकता है। सांपके सिरपर पैर रखनेकी आशासे झाड़ियोंमें घुस गई; घास रौंदती फिरी। लेकिन हाय! आदमीको देखके सभी भागते हैं। घासमें सरसराहट-खरखराहट खूब सुनाई दी; लेकिन सांपके ऊपर पैर न पड़ा। मेरे पैरमें कितने ही कांटे चुभ गये, कितने ही कीड़े लिपटे, लेकिन सांपने न काटा। मैं निराश होके लौटी; भूख और प्याससे अधमरी हो रही थी। ज्यादा टहला न गया। एक साफ जगह देखके बैठके गई। एकाएक सामने एक भालू दिखाई दिया। मैंने विचार किया, कि भालूके हाथ जान दूंगी। भालूको दौड़के मारने गई; लेकिन हाय! वह भी पास न आया। वह भागके एक पेड़पर चढ़ गया। कुछ देरके बाद पेड़से भनभनाहटकी आवाज सुनाई दी। समझ गई, कि उस पेड़पर शहदकी मक्खियोंका छत्ता था। भालू शहद छोड़के मुझे कैसे मारता?

पिछली रातको कुछ नींद आ गई। मैं भी एक पेड़से पीठ लगाके सो गई।

चौथा बयान।

अब कहां ?

जिस समय मेरी नींद खुली, उस समय कोयल और कव्वे बोल रहे थे। बांसकी पत्तियोंसे छन-छनके आती हुई जरा-जरासी धूप जमीनपर हीरे-मोती बिखेर रही थी। उजेलेमें पहले यही दिखाई दिया, कि मेरी कलाईमें कुछ नहीं। डाकुओंने कीमती चूड़ियांतक उतरवाके विधवा बना रखा था। बायें हाथमें लोहेकी एक चूड़ी थी; लेकिन दाहने हाथमें कुछ भी नहीं। रोते-रोते मैंने एक लता तोड़ कलाईसे बांध ली।

इसके बाद मैंने चारों ओर देखा। जहां मैं बैठी थी, वहां इधर-उधर बहुतेरे पेड़ोंकी कटी-कुटी लकड़ियां पड़ी थीं। कहीं कोई पेड़ समूचा कटा पड़ा था, कहीं सिर्फ शाखें पड़ी थीं। समझी, कि यहां लकड़हारे आया करते हैं। यहींसे किसी गांवकी राह है। दिनका प्रकाश देखके फिर जीनेकी इच्छा हुई,—फिर आशा जाग उठी; उन्नीस ही सालकी तो उम्र ठहरी!

बहुत ढूंढनेपर एक धुंधलीसी पगडण्डीकी रेखा दिखाई दी। उसीपर चली। चलते-चलते राहकी रेखा और भी साफ दिखाई दी। भरोसा हुआ, कि गांवमें पहुंच जाऊंगी।

अब और एक आफत नजर आई—मैं किसी बस्तीमें जा कैसे सकती थी? जो सड़ा-गला चीथड़ा डाकू मुझे पहना गये थे, उससे सिर्फ कमरसे घुटने हीतक पर्दा था; मेरी छातीपर एक

खूनतक न था। इस सूरतसे मैं बस्तीमें कैसे आ सकती थी ? छोड़ दिया जानेका विचार। स्थिर किया, कि इसी जगह मर जाना चाहिये।

सूरजकी किरनोंमें संसारका चमक-चमकके इतराना देखके, चिड़ियोंकी मीठी तानें सुनके, लताओंमें चमकीले फूलोंका झूमना देखके फिर जीनेकी इच्छा बरजने लगी। तब पेड़के कुछ पत्ते तोड़ और तिनकोंसे गुथके कमरसे गलेतक लपेट लिये। एक तरहसे लाज रखी, लेकिन पागलोंजैसी सूरत बन गई। पगली उसी राहसे फिर आगे बढ़ी। कुछ ही आगे बढ़नेपर गायका रम्भाना सुनाई दिया। समझ गई, कि गांव करीब है।

अब चला न जाता था। कभी चलनेकी आदत नहीं। तिसपर सारी रातकी जागी हुई। रातको बर्दाश्तसे बाहरकी तकलीफ। भूख और प्याससे व्याकुल होके मैं एक पेड़के नीचे सो गई। सोते ही नींद आ गई।

नींदमें स्वप्न देखा, कि मैं बादलोंपर सवार होके इन्द्रके भवन सुसराल गई हूं। खुद रतिपति मेरे पति हैं और रतिदेवी मेरी सौत। पारिजातके लिये मुझसे उससे झगड़ा चल पड़ा। ऐसे समय किसीके छूनेसे मेरी नींद टूट गई। देखा, कि एक जवान नीच मेरा हाथ पकड़के खींच रहा था। भाग्यसे वहीं एक लकड़ी पड़ी थी; उसे उठाके मैंने उसके सिरपर मारा। नहीं जानती, कि मुझमें इतना जोर कहांसे आ गया ? वह आदमी हाथसे सिर टटोलता हुआ बड़े जोरसे भागा।

वह लकड़ी मैंने फेंकी नहीं, उसीको टेकती हुई चली। बहुत चलनेके बाद एक बूढ़ी औरतसे मुलाकात हुई। वह एक गऊ हांके लिये चली आ रही थी।

मैंने उससे पूछा, कि महेशपुर कहां है? मनोहरपुर ही कहां है? बुढ़ियाने कहा,—"बेटी! तुम कौन हो? ऐसी सुन्दर लड़कीको राह-बाटमें अकेली निकलना न चाहिये? अहा, कैसा सुन्दर रूप है! तुम मेरे घर चलो।" मैं उसके घर गई। उसने मुझे भूखी देखके गाय दूहके दूध पिलाया। वह महेशपुरका ठिकाना जानती थी। मैंने उससे कहा, कि तुझे रुपये दिलाऊंगी—तू मुझे वहां पहुंचा दे। इसपर उसने जवाब दिया, कि अपना घर-द्वार छोड़के मैं कैसे जाऊं? तब उसने जो राह बताई, उसी राहसे मैं चली। शामतक चलते-चलते थक गई। एक राह चलनेवालेसे मैंने पूछा,—"महेशपुर यहांसे कितनी दूर है?" वह मेरा मुंह ताकने लगा। कुछ देर सोचके उसने कहा,—"तुम कहांसे आ रही हो?" जिस गांवको बुढ़ियाने मुझे राह बताई थी, मैंने उसी गांवका नाम बताया। इसपर उसने कहा,—"तुम भटकके उलटी राह चली आई हो। यहांसे महेशपुर एक दिनका रास्ता है।"

मेरा माथा चक्कर खाने लगा। मैंने उससे पूछा,—"तुम कहां जाओगे?" उसने कहा,—"मैं पासके गौरीपुर जाऊंगा।" लाचार मैं भी उसके पीछे-पीछे चली।

गांवमें पहुंचके उसने मुझसे पूछा,—"तुम यहां किसके घर जाओगी?"

मैंने कहा,—"मैं यहां किसीको पहचानती नहीं। किसी पेड़के नीचे पड़ रहूंगी।"

उसने पूछा,—"कौन जाति हो?"

मैंने कहा,—"कायस्थ।"

उसने कहा,—"मैं ब्राह्मण हूं। तुम मेरे साथ आओ। तुम्हारे कपड़े मैले-कुचैले हैं सही; लेकिन तुम किसी भले घरकी लड़की जान पड़ती हो। नीचोंके घर ऐसा रूप कहां?"

धिक् ऐसे रूपपर ! रूपकी तारीफें सुनते-सुनते मेरे कान पक गये थे। फिर भी; वह ब्राह्मण बुड्ढा था, मैं उसीके साथ चली।

मैंने उस रात उस ब्राह्मणके घर दो दिनके बाद कुछ आराम किया। ब्राह्मण गरीब थे; पुरोहिती करते थे। मेरे कपड़ेकी हालत देखके उन्होंने ताज्जुबसे पूछा,—"बेटी ! तुम्हारे कपड़ेकी यह कैसी दशा ? क्या तुम्हारे कपड़े किसीने छीन लिये हैं ?" मैंने कहा,—"जी हां !" उन्हें यजमानोंके घरसे बहुतेरे कपड़े मिला करते थे। उन्होंने चौड़े रङ्गीन किनारेकी दो धोतियां मुझे पहनने-को दीं। दो-चार कांचकी चूड़ियां मांगके मैंने आप पहन लीं।

बड़ी तकलीफसे मैंने इतने काम किये। शरीर गिरा जाता था। ब्राह्मणीने खानेको दिया; मैंने खा लिया। एक चटाई मिली, उसे बिछाके लेटी। लेकिन इतनी थकावटपर भी नींद न आई। सोचने लगी, कि जन्मभरके लिये गई बीती—मेरा मरना ही अच्छा था। रातभर यही सब सोचती रही।

सवेरे कुछ झपकी आई। फिर एक स्वप्न दिखाई दिया। देखा, कि सामने ही काले यमकी मूरत बड़े-बड़े दांत निकाले हंस रही थी। इसके बाद नींद न आई। दूसरे दिन सवेरे उठके देखा, कि मेरी देहमें बड़ा दर्द हो रहा था। पैर फूल आये थे; बैठनेकी ताकत नहीं।

जबतक देहका दर्द न गया, तबतक लाचार होके मुझे ब्राह्मण हीके घर रहना पड़ा। ब्राह्मण और ब्राह्मणीने मुझे बड़े आदरसे रखा, लेकिन महेशपुर जानेका कोई उपाय दिखाई न दिया। कोई स्त्री राह न जानती थी या जानेको तय्यार न थी। मर्द कई एक चलनेपर राजी हुए; लेकिन उनके साथ अकेली जाते डर जान पड़ा। ब्राह्मणने भी मना किया। उन्होंने कहा,—

"उनका चरित्र ठीक नहीं; उनके साथ न जाना। नहीं मालूम, कि उनके मनमें क्या है। भलाआदमी तुम्हारीजैसी सुन्दरी को मर्दके साथ कहीं जाने नहीं दिया चाहता।" लाचार मैं चुप रह गई।

एक दिन सुना, कि उस गांवके कृष्णदास नामक एक भलेआदमी अपने कुटुम्बके साथ कलकत्ते जायेंगे। मुझे यह एक अच्छा मौका दिखाई दिया। कलकत्तेसे मेरे बापका घर और ससुराल—दोनों ही दूर थे। लेकिन सुना था, कि मेरे चाचा कलकत्तेमें रोजगार किया करते थे। मैंने खयाल किया, कि कलकत्ते जानेसे चाचाका पता लग जायेगा। वह जरूर मुझे बापके घर पहुंचवा देंगे या मेरे बापको चिट्ठी ही लिखेंगे।

मैंने ब्राह्मणसे यह बात कही। ब्राह्मणने कहा,—"यह अच्छा विचार है। बाबू कृष्णदास मेरे यजमान हैं। मैं तुम्हें साथ ले चलके उन्हें सौंप दूंगा। वह बूढ़े और बहुत भलेआदमी हैं।"

ब्राह्मण मुझे बाबू कृष्णदासके पास ले गये। ब्राह्मणने उनसे कहा,—"यह भलेआदमीकी लड़की है, विपत्तिमें पड़के यहां भटक आई है। आप अगर इसे साथ लेते जायं, तो यह अनाथा अपने पिताके घर पहुंच सकती है।" बाबू कृष्णदास राजी हो गये। मैं उनके जनानखानेमें गई। दूसरे ही दिन उनके घरकी औरतोंके साथ उनका अनादर पानेपर भी, कलकत्ते चली। पहले दिन चार-पांच कोस चलनेके बाद गङ्गा किनारे पहुंची। दूसरे दिन नावपर सवार हुई।

पांचवां बयान।

नावमें।

मैंने गङ्गा कभी देखी न थी। गङ्गा-दर्शनसे मेरा मन मारे खुशीके नाच उठा। मेरी सारी तकलीफें क्षणभरके लिये दूर हो गईं। गङ्गाकी बहुत ही बड़ी छाती थी! उसपर छोटी-छोटी लहरें और उन लहरोंपर धूपकी झिलमिलाहट थी। जहांतक निगाह जाती थी, वहांतक चमक ही चमक दिखाई देती थी। किनारे कुञ्जजैसे पेड़ोंकी अनगिनती कतारें थीं। पानीमें तरह-तरहकी नावें थीं, पानीके ऊपर डांडेकी आवाज, मल्लाहोंकी आवाज, पानीका कल-कल शब्द था। किनारेके घाटोंपर लोगोंका शोर हो रहा था। तरह-तरहके लोग; तरह-तरहसे नहा रहे थे। कहीं सफेद बादलजैसी बहुत बड़ी रेती थी; उसमें तरह-तरहके पक्षी बोल रहे थे। गङ्गा सचमुच ही पुण्यमयी हैं। कई दिनोंतक गङ्गाकी शोभा निरखनेपर भी मेरी आंखोंकी प्यास न बुझी।

जिस दिन कलकत्ते पहुंचना था; उससे एक दिन पहले तीसरेपहर ज्वार आया। नाव आगे बढ़ न सकी; एक अच्छे गांवके पक्के घाटपर बांध दी गई। कैसी अच्छी-अच्छी चीजें दिखाई दीं। मछुए डोंगीमें मछली पकड़ते हुए दिखाई दिये। ब्राह्मण घाटकी सीढ़ियोंपर बैठके शास्त्रार्थ करते हुए दिखाई दिये। कितनी ही सुन्दर स्त्रियां सजधजके पानी भरने आईं। कोई पानी उछालती, कोई घड़ा भरती, कोई हंसती, कोई बातें करती, कोई घड़ा भरती और फिर खाली करती थी।

उसी दिन वहां मैंने दो लड़कियोंको भी देखा। उन्हें कभी भूल न सकूंगी। दोनो लड़कियां सात-आठ सालकी होंगी। देखने-में अच्छी, लेकिन बहुत खूबसूरत भी नहीं। दासोंकी सजावट

बहुत ही अच्छी थीं। कानमें झुमका, हाथ और गलेमें एक-एक गहना। जूड़ेमें फूल खुंसा हुआ था। सरसोंके रङ्ग और काले किनारेकी धोतियां पहने थीं। पैरमें चार लड़के घुंगरू थे। कमरपर छोटे-छोटे दो घड़े थे। वह सब ज्वारके पानीका एक गाना गाती हुई घाटकी सीढ़ियोंपर उतरीं। वह गाना अबतक मुझे याद है। उस समय वह बड़ा ही मधुर जान पड़ा था। एक लड़की एक पद गाती, तो दूसरी दूसरा पद गाती थी। सुना, कि उन दोनोंका नाम अमला और निर्मला था।

लड़कियोंके सींचे हुए रससे मेरे जीवनमें कुछ शीतलता आई। मुझे मन-चितसे गाना सुनते देखके कृष्णदासकी स्त्रीने मुझसे पूछा,—"इस तुच्छ गानेमें है ही क्या; जिसे तुम इतने ध्यानसे सुन रही हो?" मैंने कहा,—"लेकिन इसके सुननेमें हर्ज ही क्या है?"

वह। उफ्फोह! आजकलकी लड़कियोंमें इतनी बेहयाई!

मैं। यह सही है, कि सोलह सालकी लड़कीके मुंहसे यही गाना अच्छा न जान पड़ेगा; लेकिन सात-आठ बरसके बच्चोंके मुंहसे बहुत ही भला जान पड़ता है। जवान मर्दकी ठेस भी अच्छी नहीं है सही; लेकिन तीन बरसके लड़केके हाथका थप्पड़तक बहुत मीठा होता है।

बाबू कृष्णदासकी स्त्रीने और कुछ न कहा। वह फूलके बैठ गईं। मैं कुछ सोचने लगी। सोचने लगी, कि यह अलगाव कैसे होता है? एक ही चीज दो तरहकी क्यों जान पड़ती हैं? जो दान दरिद्रको देनेसे पुण्य होता है, वही दान बड़ेआदमीको देनेसे खुशामद क्यों समझा जाता है? जो सत्य सब धर्मोंमें प्रधान है, वही सत्य अवस्थाविशेषमें अपनी बड़ाई या परनिन्दा-पाप क्यों कहलाता है? जो क्षमा परम धर्म है, कुसूरवारको वही क्षमा देनेसे

महापाप क्यों लगता है? जो आदमी अपनी स्त्रीको जङ्गलमें निकलवा देता है, वह महापापी कहलाता है; लेकिन रामचन्द्र सीताको वनवासिनी बनानेपर भी महापापी क्यों न कहलाये?

मैं समझ गई, कि यह सब बातें अवस्थाभेदसे हुआ करती हैं। इसी समझके अनुसार मैंने आगे चलके एक बड़ो ही बेशर्मीका काम कर डाला। उसका हाल समयपर लिखा जायेगा।

नाव आगे चली। दूर होसे कलकत्ता दिखाई दिया। उसे देखके मैं दङ्ग रह गई। महलपर महल; मकानपर मकान; झोपड़े-पर झोपड़े थे। उनका अन्त न था; गिनती न थी; सीमा न थी। नदीमें खड़े जहाजोंके मस्तूलोंका जङ्गल देखके बुद्धि कलाबाजी खाने लगी। नावोंकी कतारें देखके मनमें आया, कि इतनी नावें आदमी बना कैसे सके। पास पहुंचनेपर दिखाई दिया, कि किनारेकी राहोंमें राहचलतोंको कौन कहे; गाड़ियों और पाल-कियोंका भी तांता लगा हुआ था। उस समय खयाल आया, कि उस आदमियोंके समुद्रमें मैं अपने चाचाको कैसे ढूंढ सकूंगी। नदी किनारेकी रेतसे पहचाने हुए रेतके कणोंका ढूंढ निकालना कैसे सम्भव था?

छठां बयान।

सूत्रा।

बाबू कृष्णदास कलकत्तेमें काली पूजने आये थे। आपने भवा-नीपुरमें डेरा किया। मुझसे कहा,—"तुम्हारे चाचाका मकान कहां है? कलकत्ते या भवानीपुरमें?"

भला मैं क्या जानूं, कि वह कहां रहते थे।

बाबू कृष्णदासने फिर पूछा,—"वह कलकत्तेमें किस जगह रहते हैं ?"

मैं यह भी बता न सकी। मैं समझती थी, कि महेशपुरकी तरह कलकत्ता भी छोटासा गांव होगा; वहां पूछ-तांछ होते ही मेरे चाचाका पता चल जायेगा। अब दिखाई दिया, कि कलकत्ता अनन्त अट्टालिकाओंका समुद्र है। उसमें मेरे चाचाजी कैसे मिल सकते थे ? बेचारे कृष्ण बाबूने मेरे लिये बड़ी दौड़-धूप की, लेकिन वह मेरे चाचाका पता पा न सके।

पहले हीसे तय पा गया था, कि कृष्ण बाबू कालीका दर्शन कर चुकनेपर काशी जायेंगे। वह कालीकी पूजा समाप्त करते ही लगे काशी-यात्राकी तय्यारी करने। मैंने रोना शुरू किया। उनकी स्त्रीने कहा,—"रोनेसे काम न चलेगा। मेरी बात मानो, तो एक काम करो। अब तुम किसीके घर नौकरी कर लो। आज सूबाके आनेकी खबर है। मैं उससे कह दूंगी। वह तुम्हें अपने घर कोई नौकरी दिला देगी।" यह बात सुनके मैं पछाड़ खाके गिरी और फूट-फूटके रोने लगी। हाय! क्या अन्तमें मुझे मजदूरनी बनना पड़ा? मैंने मारे झुंजलाहटके अपने होठोंको इतना चबाया, कि उनसे खून बहने लगा। कृष्णदास बाबूको मुझपर बड़ी दया आई, लेकिन उन्होंने कहा,—"मैं कर ही क्या सकता हूं ?" इसमें शक नहीं। वह बेचारे क्या कर सकते थे ? मेरा भाग्य !

मैं एक कोठरीके कोनेमें घुसके लगी रोने। सन्ध्यासे कुछ पहले कृष्ण बाबूकी स्त्रीने मुझे बुलवाया। मैं उस कोठरीसे निकलके उनके पास पहुंची। उन्होंने कहा,—"लो! यह सूबा आ गई। अगर तुम्हें इसकी नौकरी मञ्जूर हो, तो मैं इससे कह दूं।"

पहले हीसे तय कर चुकी थी, कि भूखों मरूंगी; लेकिन किसीकी नौकरी न करूंगी। लेकिन यह फैसला सुनानेसे पहले

जरा सूआको तो देख लूं। मैं देहातकी लड़की; 'सूआ' शब्दसे समझी थी, कि वह सूबेदारजैसी कोई रोबीली स्त्री होगी। लेकिन देखनेपर वह मेरी हीजैसी एक स्त्री दिखाई दी। उसकी सूरत देखने काबिल थी। बहुत दिनोंसे ऐसी प्यारी स्त्री देखी न थी। उसकी उम्र मेरी ही जितनी होगी। रङ्ग भी मुझसे अधिक खुलता हुआ न था। गहने-कपड़े भी अधिक न थे। कानमें बालियां, हाथमें कड़े; गलेमें हार और देहपर काले किनारेकी एक साड़ी थी। फिर भी; सारी करामात उसके चेहरेमें थी। चेहरा क्या, मानो खिला हुआ कमलका फूल था। सांपजैसे घुंघराले बाल फन उठाके मानो उस कमलको घेरे हुए थे। बड़ी-बड़ी आंखें;—कभी स्थिर रहती थीं; कभी हंसने लगती थीं। दोनो होंठ पतले और रङ्गीन थे। मानो गुलाबकी पंखड़ियां उलट गई थीं। मुंह छोटा; अङ्गका डौल मैं समझ न सकी। आमकी टहनी जिसतरह हवासे खेला करती है; उसीतरह उसका सारा अङ्ग खेलने लगा। जिस तरह नदीमें लहरें खेलती हैं; उसीतरह उसके शरीरमें न जाने क्या खेलने लगा। मेरी समझमें न आया। फिर भी; उसीने मेरा मन मोह लिया। पाठकोंको इस बातको याद दिलानेकी जरूरत नहीं, कि मैं पुरुष नहीं; स्त्री हूं। किसी दिन मुझे भी अपने रूपका बड़ा गर्व था। सूआके साथ कोई तीन सालका एक लड़का था; वह भी एक अधखिला फूल ही था। वह उठता था; बैठता था; चलता था; हिलता था; नाचता था; दौड़ता था; हंसता था; बकता था; मारता था;—सबका आदर भी करता था।

सूआ और उसके लड़केपर मेरी टकटकी लग गई। यह देखके कृष्ण बाबूकी स्त्रीने झल्लाके कहा,—"बातका जवाब क्यों नहीं देतीं? सोचती क्या हो?"

मैंने पूछा,—"यह कौन है?"

बाबूकी स्त्रीने डपटके कहा,—"हैं; इतना भी नहीं जानती हो ? इन्हींका नाम सूबा है।"

इसपर सूबाने हंसके कहा,—"आप भी गजब करती हैं, मासीजी ! भला यह बेचारी सूबा क्या समझे ! नई मुलाकात है। उन्हें सारी बातें समझा देनेकी जरूरत है।" यह कहके उसने मेरे मुंहकी ओर देखके कहा,—"मेरा नाम सुभाषिणी है। यह मेरी मासी हैं। बचपनसे यह मुझे सूबा ही कहा करती हैं।" इसके बाद बातकी बागडोर मासीजीने अपने हाथ ले ली। आपने कहना आरम्भ किया,—"कलकत्तेके बाबू रामरत्नके बेटेके साथ इसका विवाह हुआ है। इसकी ससुराल बड़ी ही भली है। यह बचपन हीसे ससुरालमें रहती है; बड़ी कठिनतासे इससे भेंट होती है। मेरा यहां आना सुनके यह मुझसे मिलने आई है। क्या इसके घर तुम काम किया चाहती हो ?"

मैं एक धनीकी बेटी थी; धनीके घर रुपयेके बिस्तरपर सोने चली थी; मेरी नौकरी कैसी ? मेरी आंखोंमें आंसू भी आये; होंटोंपर मुस्कुराहट भी आई। इसे सिर्फ सुभाषिणीने देखा। उसने अपनी मासीसे कहा,—"जरा मैं इनसे एकान्तमें बातें किया चाहती हूं। इनके राजी हो जानेपर मैं इन्हें अपने साथ ले जाऊंगी।" यह कहके सुभाषिणी मेरा हाथ थामके मुझे एक कोठरीमें लिवा ले गई। वहां और कोई न था। सिर्फ वह लड़का माके पीछे-पीछे पहुंच गया। वहां बिछी हुई एक चौकीपर सुभाषिणी भी बैठ गई; उसने मुझे भी अपनी बगलमें बिठा लिया। उसने कहा,—"मैंने अपना नाम, बिना पूछे बता दिया। अब यह बताओ, बहन ! तुम्हारा नाम क्या है ?"

बहन !—इतना आदर ? मन ही मन फैसला कर लिया, कि यदि नौकरी करना ही पड़ेगी, तो इसीके घर करूंगी। मैंने जवाब

दिया,—"मेरे दो नाम हैं,—एक चलित है और दूसरा अप्रचलित। इन लोगोंको मैंने अपना अप्रचलित ही नाम बताया है; आपसे भी वही बताती हूं। मेरा नाम कुमुदिनी है।"

लड़केने कहा,—"कुमोडनी।"

सु०। दूसरा नाम सुननेकी जरूरत नहीं। तुम्हारी जाति?

मैं। कायस्थ।

सु०। इस समय यह पूछनेकी जरूरत नहीं, कि तुम किसकी बेटी और किसकी बहू हो; या तुम्हारा मकान कहां है। इस समय मैं जो कुछ कहती हूं, उसे ध्यानसे सुनो। इसमें शक नहीं, कि तुम बड़े घरकी बेटी और बहू हो। तुम्हारे हाथ और गलेके गहनोंकी स्याही अबतक मौजूद है। मैं तुमसे कोई छोटा काम लिया नहीं चाहती। रसोई बनाना जानती हो?

मैं। जानती हूं। मायकेमें लोग मेरी रसोईकी बड़ी तारीफ किया करते थे।

सु०। मेरे घरमें हम सभी रसोई बनाना जानती हैं। फिर भी; कलकत्तेमें रसोईदारन रखनेकी रस्म है। हमारी रसोईदारन अपने घर जानेवाली है। मैं साससे कहके उसकी जगह तुम्हींको दिलवा दूंगी। तुम्हें रसोईदारनोंकी तरह रसोई न बनाना पड़ेगी। हम सभी रसोई बनाया करेंगी; तुम भी मदद दे दिया करना। बोलो राजी हो?

लड़केने मेरा मुंह पकड़के पूछा,—"आजी!—आजी!"

माने लड़केको गोदमें लेके कहा,—"तू पाजी!"

लड़केने कहा,—"हम बाबू; पिता पाजी!"

हम दोनो हंस पड़ीं। इसके बाद सुभाषिणी जवाब पानेकी आशासे मेरा मुंह देखने लगी। मैंने कहा,—"मुझे मञ्जूर है। आपकी मजदूरनी बनना भी मञ्जूर है।"

सु०। तुम मुझे आप-आप क्यों कहती हो। आप कहना ही हो, तो मेरी सासको कहना। उन्हींका डर है। उनका स्वभाव जरा चिड़चिड़ा है। मुझे विश्वास है, कि तुम उन्हें वश कर लोगी। मैं आदमी पहचान सकती हूं। बोलो; यह सब बातें भी मञ्जूर हैं?

मेरी दोनों आंखोंसे आंसू बहने लगे। मैंने कहा,—"मञ्जूर न करूंगी, तो और क्या करूंगी। मैं इस समय अनाथा हूं।"

सु०। अरे हां; एक बात पूछना तो भूल ही गई थी।

यह कहके सुभाषिणी एक छलांगमें अपनी मासीके पास पहुंची। उससे उसने पूछा,—"मासीजी! यह तो आपने बताया ही नहीं, कि यह आपकी होती कौन हैं?" मासीजीका जवाब मुझे सुनाई न दिया। फिर भी; उन्हें मेरे बारेमें जो कुछ मालूम था; वही उन्होंने कहा होगा। असलमें वह मेरे बारेमें जियादा कुछ जानती भी न थीं। उनसे पुरोहितजीने जो कुछ कहा होगा; वही उन्हें मालूम होगा। लड़का माके साथ जानेके बदले मेरे ही पास बैठा रहा। वह मुझसे खेलने लगा। मैं उससे बातें कर रही थी; ऐसे समय सुभाषिणी लौटके मेरे पास आई।

उसे देखके लड़केने मेरा हाथ दिखाके कहा,—"मा! लाल हाथ!"

सुभाषिणीने हंसके जवाब दिया,—"मैं पहले ही देख चुकी हूं।" मुझसे कहा,—"चलो गाड़ी तय्यार है। न चलोगी, तो जबर्दस्ती ले जाऊंगी। लेकिन यह बात न भूलना, कि अभी सासजीसे सामना करना बाकी है। उन्हें काबूमें लाना ही पड़ेगा।"

सुभाषिणीने मुझे खींचके गाड़ीमें बैठा लिया। पुरोहितजीकी दी हुई दो धोतियोंमें एक मेरी देहपर थी और दूसरी अलगनीपर

सूख रही थी; सुभाषिणीने उसे भी लेनेका समय न दिया। उसके बदले मैं सुभाषिणीके बेटेको गोदमें लेके उसका मुंह चूमती हुई उस मकानसे चली।

सातवां बयान।

रोशनाईकी बोतल।

सुभाषिणीकी सासपर जादू चलाना है। इसलिये वहां पहुंचते ही मैंने उनके चरण छूके उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद ऊपर एक निगाह डालके यह देखा, कि वह हैं कैसी। उस समय वह छतपर अन्धकारमें चटाईपर तकिया लगाये पड़ी थीं। एक मजदूरनी उनके पैर दबा रही थी। मुझे ज्ञान पड़ा, कि रोशनाईसे भरी हुई एक लम्बी बोतल हाथ-पैर लगाये चटाईपर पड़ी हुई थी। जैसे बोतलपर उसकी टोपी रहती है; वैसे ही सासजीके माथेपर सफेद बालोंकी टोपी थी। सासजीकी देहका रङ्ग अन्धकार बढ़ानेके बदले; बढ़ा रहा था।

मुझे देखके उन्होंने पूछा,—"यह कौन है?"

सु०। आप एक रसोईदारनकी फिक्रमें थीं; इसीलिये मैं इन्हें अपने साथ लाई हूं।

वह। कहां मिल गई?

सु०। मासीजीके साथ थी; उन्होंने दिया है।

वह। ब्राह्मणी है या कायस्थ?

सु०। कायस्थ!

वह। उफ!—तुम्हारी मासीकी अक्लको क्या कहूं। भला कायस्थसे मेरा काम कैसे चलेगा? कभी कोई ब्राह्मण खाने आयेगा, तो उसका रसोई कौन बनायेगा।

सु०। रोज ब्राह्मण कहां आते हैं ? हमें कुछ दिनों अपना काम चला लेना चाहिये ; इसके बाद जब ब्राह्मणी मिलेगी, तब रख ला जायेगा। फिर; ब्राह्मणियोंका मिजाज आस्मानपर चढ़ा रहता है। हमलोग अगर भूल-चूकसे भी रसोई-घरमें पहुंच गई, तो ब्राह्मणी सारी रसोई उठाके फेंक देती है। हम क्या हिन्दू नहीं, चमार हैं ?

मैंने मन ही मन सुभाषिणीकी बड़ी तारीफ़ की। चतुरा रोशनाईकी बोतलको मुट्ठीमें लानेका ढब खूब जानती थी। उसकी बात सुनके मालिकाने जवाब दिया,—"ठीक कहती है, बहू! मजदूरनियोंका इतना अहङ्कार बर्दाश्त नहीं होता। अच्छा; कुछ दिनोंके लिये यही रख ली जाये। महीना क्या लेगी ?"

सु०। मैंने अभीतक ठीक नहीं किया है।

वह। वाहरी बहू! मजदूरनी ले आई; लेकिन महीना ठीक ही न किया। खूब गृहस्थी चलाओगी तुम। (मुझसे) क्या महीना लोगी ?

मैं। आपकी शरण आ गई हूं। जो देंगी, वही ले लूंगी।

वह। ब्राह्मणीको कुछ ज़ियादा दिया जाता है; लेकिन तुम कायस्थ हो। तुम्हें तीन रुपये माहवार और खाना-कपड़ा मिलेगा।

मुझे तो एक आश्रयकी जरूरत थी। मैं उसी महीनेपर राज़ी हो गई। फिर भी; महीनेका नाम सुनके मुझे रोना आ गया। मैंने आंखोंके आंसू पोंछे कहा,—"ठीक है।"

मैं समझी, कि बला टल गई; लेकिन ऐसा न हुआ। बोतलमें रोशनाईकी कमी न थी। उसने कहा,—"तुम्हारी उम्र क्या है ? अंधेरेमें चेहरा तो दिखाई नहीं देता है; सिर्फ आवाज सुन रही हूं। यह तो निरी छोकरीकी आवाज मालूम होती है।"

मैं। मेरी उम्र कोई उन्नीस-बीस सालकी है।

वह। तो चंडी! कहीं और जाके नौकरी ढूंढो। मैं छोकरियों-को नौकरी नहीं दिया करती।

सु०। क्यों, अम्मा! क्या छोकरियां काम नहीं कर सकतीं?

वह। चुप! तू क्या जाने इन बातोंको!

सु०। अम्मा! आप भी तमाशेकी बातें करती हैं। क्या देशकी कुल छोकरियां खराब होती हैं?

वह। न होंगी खराब। लेकिन मैं छोकरियोंको अपने घरमें घुसने न दूंगी।

अब मैं अपनेको संभाल न सकी। वहांसे रोती हुई उठ गई। रोशनाईकी बोतलने बहूसे पूछा,—"क्या छोकरी चली?"

सु०। जान तो ऐसा ही पड़ता है।

वह। जाती है, तो जाने दो।

सु०। इसतरह कैसे जाने दूं? कुछ पानी-वानी पिलाके बिदा किये देती हूं।

यह कहके सुभाषिणी भी उठी और मेरे पास आई। वह मुझे पकड़के अपनी सोनेकी कोठरीमें ले गई। मैंने उससे कहा,—"मुझे यहां क्यों खींच लाई हो? प्राण और पेटके लिये भी मैं अपनी बेइज्जती करा नहीं सकती।"

सु०। मैं सिर्फ इतना ही चाहती हूं, कि आजकी रात तुम यहीं रह जाओ।

जाती तो कहां जाती? लाचार होके वह रात वहीं बिताने-पर राजी हो गई। इधर-उधरकी बातोंके बाद सुभाषिणीने पूछा,—"यहां न रहोगी, तो जाओगी कहां?"

मैं। गङ्गाके पानीमें।

यह सुनके सुभाषिणीकी भी आंखें भर आईं। उसने कहा,—"नहीं-नहीं; गङ्गाके पानीमें समानेकी जरूरत नहीं। अब तुम जरा बैठके मेरी बातें सुनो। देखना; बीचमें छेड़-छाड़ न कर बैठना।"

इसके बाद सुभाषिणीने गोविन्दी नामकी मजदूरनीको बुलाया। वह सुभाषिणीकी खास मजदूरनी थी। मोटी, छोटी, काली, चालीसके पार; हंसी मुंहमें समाती न थी। हर बातमें हंसी। सुभाषिणीने उससे कहा,—"जरा उन्हें, तो बुलवा!"

गो०। लेकिन क्या वह काम-काज छोड़के आ सकेंगे? फिर, मैं बुलवाऊं किससे?

सुभाषिणीने जरा तेवर बदलके कहा,—"जिससे चाहे, बुलवा! अभी बुलवा!"

गोविन्दी हंसती हुई वहांसे चली गई। मैंने सुभाषिणीसे पूछा,—"किसे बुलवाया है?—अपने पति देवताको?"

सु०। नहीं तो क्या इतनी रातको अड़ोसी-पड़ोसीको बुलवाऊंगी?

मैं। मैंने यह बात इसलिये पूछी, कि क्या मुझे यहांसे टल जाना चाहिये।

सु०। इसकी जरूरत नहीं। तुम यहीं बैठी रहो।

सुभाषिणीके पति देवता आये। खूबसूरत जवान थे। उन्होंने आते ही पूछा,—"तलबीकी वजह क्या है?" मुझपर निगाह पड़ते ही पूछ बैठे,—"यह कौन है?"

सु०। इन्हींके लिये तो तुम्हें बुलाया है। ब्राह्मणी घर जायेगी; उसकी जगह काम करनेके लिये इन्हें मासीजीसे ले आई हूं। लेकिन अम्मा इन्हें रखा नहीं चाहतीं।

वह। वजह?

सु०। इनकी उम्र कम है।

सुभाषिणीके पति देवता कुछ हंसे। अन्तमें उन्होंने कहा,—"तो तुम्हारा क्या हुक्म है?"

सु०। इन्हें रखना ही पड़ेगा।

वह। क्यों?

सुभाषिणीने स्वामीके पास जाके बड़े ही धीमे स्वरमें कहा,—"मेरा हुक्म!"

उसके स्वामीने भी उसी स्वरमें कहा,—"जो आज्ञा!"

सु०। तो कब?

वह। खानेके समय।

उनकी यह बातें मैंने सुन लीं। सुभाषिणीके स्वामीके जानेपर मैंने कहा,—"मान लिया, कि उन्होंने मेरी नौकरीका बन्दोबस्त कर ही दिया; लेकिन मैं इतनी बातें सुननेके बाद यहां रहना कैसे मञ्जूर करूं?"

सु०। यह सब बादकी बातें हैं। गङ्गा एक या दो दिनमें कहीं भाग न जायंगी।

रात कोई नौ बजे सुभाषिणीके स्वामी—रमण बाबू—भोजन करनेके लिये आये। उनकी मा—वही रोशनाईकी बोतल—उनके पास जाके बैठी। सुभाषिणीने मेरा हाथ थामके कहा,—"अब आओ, जरा तमाशा देखें।" यह कहके वह मुझे खींच ले गई।

हम दोनो आड़से देखने लगीं। रसोईमें तरह-तरहकी चीजें बनी थीं; लेकिन वह सब रमण बाबूके पसन्द न आईं। वह हर चीजका एक ग्रास चखते और उसे अपने सामनेसे हटा देते थे। बेचारे भूखे ही रह गये। उनकी माने पूछा,—"क्यों, खाते क्यों नहीं?"

बेटेने कहा,—"ऐसा खाना आदमी नहीं; पशु ही खा सकते हैं। ब्राह्मणीके हाथकी रसोई खाते-खाते मैं परेशान हो गया हूं। कलसे चाचीजीके घर जाके खाना खा आया करूंगा।"

यह सुनके मालिका पानी हो गईं। बोलीं,—"इसकी जरूरत नहीं। मैं दूसरी रसोईदारन रखूंगी।"

रमण बाबू हाथ धोके उठ गये। सुभाषिणीने कहा,—"आज भूखे ही उठ गये। अच्छा; काम बन जाये, तो सब अच्छा ही अच्छा है।"

मैं घबराके कुछ ऊल-जलूल बका ही चाहती थी; ऐसे समय गोविन्दीने आके सुभाषिणीसे कहा,—"चलो, तुम्हें तुम्हारी सास बुलाती हैं।" यह कहके वह मेरी ओर देखके हंस पड़ी। मैं समझ गई, कि उसे हंसीका रोग था। सुभाषिणी अपनी सासके पास पहुंची। मैं छिपके दोनोंकी बातें सुनने लगी।

रोशनाईकी बोतलने पूछा,—"वह कायस्थकी छोकरी चली गई?"

सु०। नहीं। रसोई बनी न थी; इसीलिये मैंने उसे रोक रखा है।

वह। रसोई कैसा बनाती है?

सु०। नहीं जानती!

वह। तो आज उसे जाने न देना। कल उससे दो-चार चीजें बनवाके देखना चाहिये।

सु०। तो मैं जाके उसे रोकती हूं।

यह कहके सुभाषिणी मेरे पास आई। उसने मुझसे छूटते ही पूछा,—"रसोई बनाना जानती हो न?"

मैं। मैं तो पहले ही कह चुकी हूं, कि जानती हूं।

सु०। अच्छी रसोई बना सकती हो?

मैं । कल खाके आप ही देख लेना ।

सु० । आदत न हो, तो साफ-साफ कह दो । मैं तुम्हारे पास बैठके तुम्हें बता दूंगी ।

मैंने हंसके कहा,—"यह सब बादकी बातें हैं !"

आठवां बयान ।

बीबी पाण्डव ।

दूसरे दिन मैंने ही रसोई बनाई । सुभाषिणी मुझे सिखाने आई, तो मैंने उसी समय जान-बूझके तड़केमें लाल मिर्च छोड़ दी । वह खांसती और छींकती हुई उठके भागी । भागते-भागते सुनाती गई,—"बहुत शरीर हो, भाई !"

रसोई तय्यार होनेपर पहले बाल-बच्चोंने खाई । सुभाषिणीका लड़का अधिक अन्न न खाता था ; किन्तु उसके पांच सालकी एक लड़की थी । उससे माने पूछा,—"कैसी रसोई हुई, मुन्नी !"

मुन्नीने कहा,—"खूब हुई है ।" इसके बाद वह लगी गाने,—

"रानी मेंडकी, री ; तू तो पानीकी है रानी ।"

साथ ही माने डांट बताई,—"क्या टें-टें लगा रखी है ।" यह सुनके बेटी चुप हो गई ।

इसके बाद रमण बाबू खाने बैठे । मैं आड़से देखने लगी । मुझे दिखाई दिया, कि आज उन्होंने सारी चीजें साफ कर दीं । मालिकाके आनन्दकी हद न रही । रमण बाबूने पूछा,—"आजकी रसोई किसने बनाई है, अम्मा ?"

मा । एक नई रसोईदारनने !

रमण० । खूब बनाती है ।

इतना कह और हाथ-मुंह धोके वह चले गये। इसके बाद स्वयं मालिक खाने बैठे। मुझे वहां जानेका हुकम न मिला। वही बुड्ढी ब्राह्मणी उनकी थाली उनके सामने ले गई। अब मैं मालिकाकी बेचैनीका कारण समझ गई। यह भी समझ गई, कि वह किसलिये नौजवान मजदूरनियोंको घरमें रखा न चाहती थीं। मैंने उसी समय प्रतिज्ञा की, कि जबतक उस मकानमें रहूंगी; मालिकके सामने न जाऊंगी।

इसके बाद मैंने लोगोंसे मालिकके चरित्रका हाल पूछा। जांचसे जान पड़ा, कि वह बड़े ही भलेआदमी और जितेन्द्रिय थे। फिर भी; रोशनाईकी बोतल रोशनाईसे भरी हुई थी।

ब्राह्मणीके लौटनेपर मैंने उससे पूछा, कि मालिकने रसोई खाके क्या कहा? मेरी यह बात सुनते ही वह लाल हो गई। उसने चीखके जवाब दिया,—"खूब रसोई बनाई तुमने। रसोई कौन नहीं बना सकता? लेकिन बुड्ढीकी रसोईमें स्वाद कहां? अब रसोईदारनका गुण नहीं; उसका रूप और जोबन देखा जाता है!"

समझ गई, कि मालिकने रसोई पसन्द की। फिर भी; ब्राह्मणीसे जरा छेड़ करनेकी इच्छा हुई। मैंने कहा,—"ठीक कहती हो, दादी! वह रसोईदारन कैसी, जिसके रूप-यौवन न हो। बुड्ढीको देखके लगी हुई भूख भी भाग जाती है।"

दांत और आंखें निकालके ब्राह्मणीने कटकटाके कहा,—"क्या तुम्हारा रूप-जोबन रह जायेगा? इसे क्या कभी आग हो न लगेगी?"

यह कहते-कहते ब्राह्मणीने एक थाली उठाई। वह उसके क्रोधसे कांपते हुए हाथसे छूटके फर्शपर गिरी। बड़ा शोर हुआ।

मैंने मुस्कुराके कहा,—“देखा, दादी ! रूप-यौवन होता, तो हाथको थाली हाथ होने देती ।”

यह सुनके ब्राह्मणी आग-बबूला हो गई । वह एक लकड़ी उठाके मुझे मारने दौड़ी । भला मेरे पैरोंको वह क्या पा सकती थी ? लगी थकके हांपने और मुझे ऊंची-नीची सुनाने । मैंने भी उससे हंसके कहा,—“अब रसोई छोड़के कव्वे उड़ाया करो ।”

ऐसे समय रसोई-घरमें सुभाषिणी आ पहुंची । ब्राह्मणी मारे क्रोधके उसे देख न सकी । उसने मुझपर फिर धावा मारके कहा,—“लुच्चो ! बड़े-छोटेका जरा भी खयाल नहीं । मैं ब्राह्मणकी बेटी ; कव्वे उड़ाऊं ? मुझे पागल समझ लिया है ?”

अब सुभाषिणीने आगे बढ़के और तेवर बदलके कहा,—“हैं ; मेरी लाई हुई रसोईदारन, लुच्ची ? निकलो, मेरे मकानसे !”

ब्राह्मणीकी नानी मर गई । वह हाथकी लकड़ी फेंकके लगी रो-रोके कहने,—“किसने लुच्ची कहा ? मेरे मुंहसे छोटी बात कभी निकलती ही नहीं । लोगोंको अच्छा-बच्चा कहते मेरा मुंह सूखता है । हाय, हाय ! मुझपर इतनी बड़ी लाञ्छना !”

यह सुनके सुभाषिणी खिलखिलाके हंस पड़ी । उधर ब्राह्मणी फूट-फूटके रोती हुई बोली,—“हे सूरज भगवान् ! जो मैंने लुच्चा कहा हो, तो मेरी आंख ही फूट जाय ।”

मैं । और मुंह भी टूट जावे ।

ब्रा० । हाय ! मुझे मौत क्यों नहीं आती ?

मैं । हैं ; इतनी जल्दी ? अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है, दादी !

ब्रा० । मुझे नरकमें भी ठिकाना नहीं मिलता !

मैं । न कैसे मिलेगा ? जैसे बनेगा ; मैं ठिकाना करा दूंगी ; नरकके लोग अगर तुम्हारी बनाई हुई रसोई ही न खायेंगे, तो उनका भोग कैसे पूरा होगा ?

ब्राह्मणीने रो-रोके सुभाषिणीसे फरियाद की,—“सुनती हो, इस छोकरीकी बातें? जो मनमें आता है; कहे जाती है। मैं अब मालिकाके पास जाती हूं।”

सु०। तो मैं भी उनसे कहूंगी, कि तुमने मेरे सामने इन्हें लुच्चा बनाया है।

यह सुनते ही बुड्ढीने अपने हाथों अपना मुंह पीटना शुरू किया। कहने लगी,—“कब कहा है, मैंने लुच्ची? (एकबार मुंह पीटके) कब कहा है? (दो बार मुंह पीटके) कब-कब? (तीन बार धड़ाधड़ मुंहपर दुहत्थड़—इति समाप्त!)

हम दोनो बुड्ढीको मिठाससे समझाने लगीं। पहले मैंने कहा,—“हां बहूजी! तुमने इनके मुंहसे ‘लुच्ची’ कब सुन लिया? इन बेचारीने तो जबानतक नहीं हिलाई। इनको जियादा बोलनेकी आदत ही नहीं!”

ब्राह्मणी चटसे बोल उठी,—“सुना बहूजी! मेरे मुंहसे छोटी बात निकला ही नहीं करती।”

सु०। ऐसा ही होगा। शायद बाहर किसीने किसीको गाली दी होगी; मैं समझी, कि तुम्हारे ही मुंहसे निकल गई। मैं भी हैरान थी, कि ब्राह्मणी दादीके मुंहसे ऐसी बात कैसे निकल गई। (मुझसे) इनको क्या बात है? इनके पेटमें लच्छन भरे हुए हैं। कलको बनाई हुई इनकी रसोई खाई थी न? वह रसोई बनाती हैं, कि सारे कलकत्तेमें कोई स्त्री बना ही नहीं सकती।

ब्राह्मणीने मेरी ओर पलटके कहा,—“सुना?”

मैंने कहा,—“यह कौनसी नई बात है। इस घरमें सभी यही कहते हैं!”

ब्राह्मणीने पानी-पानी होके कहा,—“भाई, तुमने रसोई खाई है; इसीलिये मेरे बनाये हुए खानेकी इतनी तारीफें करती हो। तुम

किसी अच्छे घरानेकी स्त्री हो; भला तुम्हें मैं कभी गाली दे सकती हूं? तुम किसी बातकी चिन्ता न करना। अगर मुझे घर जाना ही पड़ेगा, तो मैं तुम्हें रसोई सिखाके जाऊंगी।"

इसतरह बुड्ढीसे मेल कर लिया गया। बहुत दिनोंतक रोनेके बाद आज मुझे जरा हंसने-हंसानेका मौका मिला। यह हंसी दरिद्रकी निधिकी तरह बड़ी ही मीठी मालूम हुई। इसीलिये इस बुड्ढीकी बातें विस्तारसे लिख दीं।

इसके बाद स्वयं मालिका खाना खाने बैठीं। मैंने उनके सामने बैठके उन्हें भोजन कराया। कमबख्त तहपर तह जमाती गई। हाथ ही न रुकता था। अन्तमें उसने अघाके कहा,—"खूब रसोई बनाई है तुमने। कहां सीखी थी?"

मैं। मायकेमें!

वह। तुम्हारा मायका कहां है?

मैंने झूठा जवाब दे दिया। मालिकाने कहा,—"यह तो भले-घरोंकी रसोई है। क्या तुम्हारे बाप बड़े आदमी थे?"

मैं। भगवान्‌की दयासे सुखी थे!

वह। तो तुम रसोईदारन कैसे हुईं?

मैं। समयके फेरसे!

वह। अब तुम इसी घरको अपना घर बनाओ। आरामसे रहोगी। जैसे घरका बेटा हो; वैसे ही आदरसे यहां रखी जाओगी।

इसके बाद उसने सुभाषिणीको बुलाके कहा,—"देखो, बेटा! यह किसी भलेघरकी लड़की है। इसे कोई कड़ी बात कहने न पाये। तुम भी इससे जियादा छेड़-छाड़ न करना।"

अन्तमें सुभाषिणी खाने बैठी। उसने अपनी बगलमें मुझे भी बैठाके खाना खिलाया। खाते समय उसने मुझसे पूछा,—"तुम्हारी कितनी शादियां हुई हैं बहन?"

मैं उसकी बात समझ गई। मैंने कहा,—"क्यों; क्या मेरी बनाई हुई रसोई खाते-खाते द्रौपदी याद आ गई।"

सु०। ओ यस! बीबी पाण्डव फर्स्ट क्लास बावर्चिन थी। अब मेरी सासजीके मिजाजका हिसाब समझ गईं न?

मैं। कुछ-कुछ। फिर भी; इसमें उनका दोष ही क्या है। कङ्गाल और भलेआदमियोंकी लड़कियोंमें सभी अलगाव किया करते हैं।

सुभाषिणी खिलखिलाके हंस पड़ी। उसने कहा,—"अरी वाह री मेरी भोली, बहन! क्या तुम यह समझती हो, कि तुम्हें भले-घरकी बेटी समझके ही उन्होंने तुम्हारा इतना आदर किया है?"

मैं। नहीं, तो इसकी जरूरत क्या थी?

सु०। इसकी जरूरत इसलिये थी, कि तुम अच्छी-अच्छी चीजें बनाया करो और उनका बेटा इसीतरह हर रोज पेट भरके खाया करे। अब तुम जरा तन जाओ, तो तुम्हारी तनखाह डबल हो जाये।

मैं। मुझे तनखाह डबल करानेका शौक नहीं। मैं तो तनखाह सिर्फ इसलिये लेती हूं, कि न लेनेसे कोई झगड़ा खड़ा न हो जाये। वह रुपये मैं तुम्हींको दे दिया करूंगी; तुम गरीब-कङ्गा-लोंमें बांट देना। मुझे आश्रय मिल गया; यही मेरे लिये बहुत है।

नवां बयान।

पके बालोंके सुख-दुःख।

मुझे रहनेका ठिकाना मिला। और एक अमूल्य रत्न मिला, जिसका नाम था,—हितैषिणी सखी। दिखाई दिया, कि सुभा-

षिणी मुझे हृदयसे चाहती थी; अपनी सगी बहनके साथ जैसा व्यवहार किया जाता है; वह मेरे साथ वैसा ही व्यवहार करने लगी। उसकी दया देखके नौकर-मजदूरनियां भी मेरी इज्जत करने लगीं। इधर रसोईमें भी बड़ी आसानी हो गई। वह बुड्ढी ब्राह्मणी—सोनाकी मा—अपने घर न गई। उसके माथेमें समा गया, कि अगर वह मकान गई, तो उसकी नौकरी चली जायेगी और मैं उसकी जगह कायम कर दी जाऊंगी। यह समझके वह सैकड़ों बहाने निकालके मकान न गई। सुभाषिणीकी सिफारिशके जोरसे हम दोनो ही रह गईं। उन्होंने सासको पट्टी पढ़ाई, कि कुमुदिनी भलेघरकी बेटी है; अकेली इतनी रसोई बना न सकेगी; और सोनाकी मा बेचारी बुड्ढी हुई; इस उम्रमें वह कहां जाये। सासने कहा,—"दो रसोईदारनें कैसे रखी जायेंगी? इतना रुपया कहांसे आयेगा?"

बहूने कहा,—"अगर एक हीको रखना है, तो सोनाकी माको रखिये। कुमुदिनी इतनी रसोई बना न सकेगी।"

लाचार होके मालिकाने कहा,—"नहीं-नहीं;—सोनाकी माकी रसोई लड़केके पसन्द नहीं आती। अच्छा; दोनों ही रखी जाय।"

मेरे ही लिये सुभाषिणीने इतना कौशल किया। मालिका बहूके हाथकी पुतली थीं; क्योंकि वह रमणकी बहू थी और इतनी मजाल किसकी, कि वह रमणकी बहूकी बात टाल सके। फिर; सुभाषिणीकी बुद्धि जैसी तेज थी; स्वभाव भी वैसा ही सुन्दर था। उसीकी बुद्धिसे मेरे उन दुःखके दिनोंमें सुखकी झलक दिखाई दी।

मैं सिर्फ दो-चार तरकारियां या कोई नई चीज बना दिया करती थी। बाकी समयमें सुभाषिणीसे बातें किया करती थी या लड़के-लड़कियोंके साथ खेला करती थी। कभी-कभी सासजीसे

भी बातें कर आया करती थी। इस बातचीतने मुझे एक बड़े झगड़ेमें डाला। सासजीका विश्वास था, कि उनकी उम्र अभी बहुत ही थोड़ी है; सिर्फ बदकिस्मतीसे उनके थोड़े बाल पक गये हैं; अगर वह सब नोच लिये जायें, तो वह एकबार फिर जवान हो जायें। इसीलिये उन्हें जब कभी आदमी या समय मिल जाता था, तब वह पक्के बाल नुचवाने बैठती थीं। एक दिन उन्होंने मुझे इस कामके लिये बेगार पकड़ा। मेरा हाथ जरा तेज चलता था; मैंने जल्द-जल्द कार्त्तिक महीनेके वह कांसके फूल नोचके जुदा किये। दूरसे देखके सुभाषिणीने मुझे उंगलीके इशारेसे बुलाया। मैं साससे छुट्टी लेके बहूके पास पहुंची। सुभाषिणीने कहा,—"गजब कर रही हो तुम। क्या मेरी सासकी खोपड़ी सफा-चट कर देनेका विचार है?"

मैं। रोज-रोजका झगड़ा आज ही मिटा दिया जाये, तो हर्ज क्या है?

वह। गजब हो जायेगा। भागते राह न मिलेगी।

मैं। बात यह है, कि मेरे हाथ जब एकबार चलने लगते हैं, तब रोकनेपर भी नहीं रुकते।

वह। दस-बीस बाल चुनके उठ आया करो।

मैं। मैं तो उठा चाहती हूं; लेकिन तुम्हारी सास मेरा पिण्ड ही नहीं छोड़तीं।

वह। उनके रोकनेपर कह दिया करो, कि सफेद बाल हैं ही नहीं; निकालूं क्या; अपना सर?

मैंने हंसके कहा,—"भला ऐसा भी कहीं हो सकता है? लोग क्या कहेंगे? यह तो काले तालकी डकेती हो जायेगी!"

वह। काले तालकी डकेती कैसी?

सुभाषिणीकी बातोंमें पड़के मैं असावधान हो गई थी; इसी-लिये मेरे मुंहसे काले तालका नाम एकाएक निकल गया। मैंने बात दबा दी; खुलके इतना ही कहा,—"काले तालकी कहानी ज़रा लम्बी है। कभी फुर्सत मिलनेपर सुना दूंगी।"

मैं हंसती हुई लौटी और मालिकाके बाल फिर नोचने लगी। दो-चार बाल चुननेके बाद ही बोली,—"अब उतने सफेद बाल रह नहीं गये हैं। जो कुछ हैं; उन्हें कल चुन दूंगी।"

यह सुनके रोशनाईकी बोतल कुछ हंसी। बोली,—"फिर भी, कमबख्त कहती हैं, कि तुम्हारे कुल बाल पक गये हैं।"

उस दिन मेरा आदर बढ़ गया। फिर भी; रोज़-रोजके झगड़े-से बचनेके लिये मैंने कोई उपाय करना स्थिर किया। मैंने अपनी तनखाहके रुपयोंसे एक रुपया गोविन्दीके हाथ देके कहा,—"किसीसे कह दो, कि वह एक रुपयेका खिजाब ले आये।" गोविन्दी मारे हंसीके लोटने लगी। हंसी रुकनेपर बोली,—"क्या होगा खिजाब? किसके बाल काले करोगी?"

मैं। ब्राह्मणोंके।

अब गोविन्दीकी हंसीकी हद न रही। ऐसे समय ब्राह्मणी भी वहां आ पहुंची। उसे देखके गोविन्दी अपनी हंसी रोकनेके लिये अपने मुंहमें कपड़ा ठूंसने लगी। जब हंसी किसीतरह न रुकी, तब वह वहांसे उठके भागी। ब्राह्मणीने कहा,—"यह इतना हंस क्यों रही थी?"

मैं। उसे सिवा हंसनेके और काम ही क्या है? अभी मैंने कहा था, कि दादीके बालोंमें खिजाब लगा दिया जाये, तो कैसा? बस इसीपर हंस-हंसके लोटने लगी।

ब्रा०। भला इसमें हंसनेकी कौनसी बात थी? खिजाब लगा-नेमें हर्ज ही क्या है? बाल सनजैसे सफेद तो न दिखाई देंगे?

मैं समझ गई, कि ब्राह्मणीको खिजाबका शौक है। मैंने कहा,—"न घबराओ दादी; किसी दिन तुम्हारे बालोंमें भी खिजाब हो जावेगा।"

ब्रा०। जीती रहो; भगवान् तुम्हें सोनेके गहने पहनायें; तुम्हारे हाथसे अच्छी रसोई बनवायें!

गोविन्दी हंसोड़ है; लेकिन है बड़े ही कामकी स्त्री। उसने बहुत जल्द एक शीशी खिजाब लाके हाजिर कर दिया। मैं उसे हाथमें लिये हुई मालिकाके पके बाल चुनने गई। मालिकाने पूछा,—"हाथमें क्या है?"

मैं। एक अर्क! इसकी तासीर यह है, कि सरमें लगाते ही पके बाल गिर जाते हैं; सिर्फ कच्चे बाल ज्योंके त्यों रह जाते हैं।"

मालिकाने कुलबुलाके पूछा,—"हैं!—कच्चे बाल रह जाते हैं? ऐसे अर्कका तो नाम भी सुननेमें न आया था। मेरे बालोंपर जरा मल तो दो। लेकिन देखना; कहीं खिजाब न चुपड़ देना!"

मैंने उसके बालोंपर अच्छी तरहसे खिजाब कर दिया। चलते समय कह आई, कि सरके कुल सफेद बाल गिर गये। खिजाबके असरका समय होनेपर सासजीकी वह सफेद टोपी ऊपरसे नीचे-तक काली हो गई। शामतकी मार! उसी समय गोविन्दी सास-जीके कमरेमें झाड़ू दे रही थी। उसकी निगाह जो उनकी टोपीकी नई रङ्गतपर पड़ी, तो वह फेंकके झाड़ू; हंसी रोकनेके लिये मुंहमें कपड़ा ठूंसती हुई; वहांसे भागी। भागती-भागती सदर फाटक-तक पहुंची। वहां 'क्या है गोविन्दी! क्या है गोविन्दी!' का तूफान उमड़ा हुआ देखके बेचारी उल्टे पैरों जानानखानेकी ओर वापस भा-गी। वहां वह दो सीढ़ियां पारकर, मुंहमें कपड़ा भरती हुई, खुली छत-

घर पहुंची । सामने ही सोनाकी मा बैठी हुई धूपमें बाल सुखा रही थी । उसने पूछा,—"क्या हुआ ?" जवाब कौन देता ?—मारे हंसीके गोविन्दी लोटन कबूतरी बनी हुई थी । ब्राह्मणाने जब बहुत तङ्ग किया, तब उसने सिर्फ अपने हाथसे अपना माथा दिखा दिया । सोनाकी मा भला यह पहेली कैसे बूझ सकती थी ? वह झट्टके छतसे नीचे उतरी, तो उसे मालिकाके सब बाल काले दिखाई दिये । यह देखते ही वह लगी पुक्का फाड़के रोने । रोते-रोते बोली,—"अरे मेरे राम !—यह क्या हुआ, राम ! सफेद बाल कलतक तो थे;—आज कहां चले गये ! हाय; कौन उन्हें लूट ले गया ?"

ऐसे समय सुभाषिणाने आके मेरा आंचल पकड़ा । हंसते-हंसते कहा,—"बड़ी शाब हो, तुम भाई ! अम्माके बालोंपर खिजाब कर दिया है ?"

मैं । हूं !

वह । कोई ऐसा भी करता है ? देखो; क्या होता है !

मैं । होगा क्या ; खाक । तुम निश्चिन्त रहो !

ऐसे समय स्वयं मालिकाकी तलबी आई । उन्होंने कहा,—"क्यों बेटी, कुमुदिनी ! क्या तुमने मेरे बालोंपर खिजाब कर दिया है ?"

मैंने देखा, कि मालिकाके मुंहसे उनके मनका आनन्द फूटा पड़ता है । मैंने कहा,—"आपसे किसने कहा, अम्मा ?"

वह । यही सोनाकी मा कह रही है ।

मैं । इनके कहनेसे क्या होगा ? यह खिजाब नहीं; मेरा एक अर्क है ।

वह । अजब अर्क है, बेटी ! जरा सामनेकी कोठरीसे आईना तो उठा ला ।

मैं एक आईना उठा लाई। उसमें अपना मुंह देखके मालिकाने कहा,—"वाह! कुल काले ही काले बाल रह गये हैं। इसीलिये यह कम्बख्त खिजाब-खिजाब कर रही थी। भला खिजाबमें इतना असर कहां?"

मालिकाके आनन्दकी हद न रही। उसी दिन रातको मेरी रसोईकी तारीफें करनेके बाद उसने मेरी तनखाह बढ़ा दी। यह भी कहा,—"देखो, बेटी! तुम्हारे हाथमें कांचकी चूड़ियां देखके मेरी छाती फटी जाती है।" यह कहके उसने अपना उतारा हुआ पुराना एक जोड़ा सोनेका कड़ा निकालके मुझे इनाममें दे डाला। लेते समय मेरा सर कट गया—आंखोंसे आंसू बहने लगे। इसा-लिये मुझे इनकार करनेका मौका ही न मिला।

कुछ देर बाद बुड्ढी ब्राह्मणी मेरे गले पड़ी। उसने कहा,—"क्यों बेटी! अब तो वह अर्क तुम्हारे पास न होगा?"

मैं। कौन अर्क?—वही खसमके रिझानेका?

वह। फिर वही बचपनकी बातें? भला मेरे खसम कहां?

मैं। हैं?—क्या एक भी बाकी नहीं बचा?

वह। एक भी?—क्या तेरे पांच-पांच खसम थे?

मैं। नहीं तो मैं इतनी अच्छी रसोई कैसे बना सकती? बिना द्रौपदी बने अच्छी रसोई बनाना असम्भव है। किसी तरह पांच खसम जुटा लो; फिर देखो, अपनी रसोईका स्वाद!

ब्राह्मणीने एक ठण्डी सांस भरके कहा,—"एक ही नहीं जुटता, पांच कहांसे ले आऊं? मुसलमानोंमें कोई रोक-थांभ नहीं; सारे झगड़े हिन्दू स्त्रियोंके ही लिये हैं। होनेका सामान ही क्या है? भला इन सन जैसे बालोंको कौन पूछेगा? इसीलिये पूछती थी, कि क्या वह बाल काला करनेवाला अर्क है तुम्हारे पास?"

मैं। है क्यों नहीं। तुम्हारे लिये, दादी! जान हाजिर है; अर्कका क्या हिसाब?

यह कहके मैंने खिजाबकी शीशी ब्राह्मणीको दे दी। वह बेचारी रातको रसोई-पानीसे छुट्टी पानेपर सोनेके समय खिजाब घिसने बैठी। अंधेरेमें कुछ खिजाब माथेमें और कुछ मुंह और आंखोंपर फिर गया। सबेरे जब उन्होंने अपनी कोठरीसे उदित होके घरको अपना दर्शन दिया, तो लोगोंको उनका रूप बड़ा ही विचित्र दिखाई दिया। उनके बाल बिल्लियोंके बालकी तरह बहुरङ्ग दिखाई दिये। कुछ लाल; कुछ काले; और कुछ सफेद। मुंह दोरङ्गा दिखाई दिया। कुछ तो कलमुंही बंदरियाजैसा काला; और कुछ सफेद। उन्हें देखते ही सारा जनानखाना मारे हंसीके लोटने लगा। लोग कोशिश करनेपर भी हंसी रोक न सकते थे। नौकर-मजदूरनियां काम छोड़के ब्राह्मणीका दर्शन करने और हंसनेके लिये आईं। गोविन्दी मारे हंसीके बेदम हो गई। अन्तमें वह सुभा-षिणीके पास पहुंची और वहां मारे हंसीके लोट-लोटके कहने लगी,—"दुहाई बहूजी! मेरा हिसाब चुका दो। मैं इस घरमें न रहूंगी। नहीं तो किसी दिन मारे हंसीके मेरा दम ही निकल जावेगा।"

सुभाषिणीकी लड़कीने भी ब्राह्मणीसे कहा,—"दादी-दादी! यह क्या हुआ?

ककड़ी काट मृदङ्ग बनाया; नीबू काट मजीरा।
चार सखी मिल गाने बैठीं; नाचे बालम खीरा॥"

एक दिन एक बिल्लीने जली हुई कड़ाही चाटी थी। उसके सारे मुंहमें कालिख और मसाला लग गया था। सुभाषिणीके लड़केने उसे देखा था। उसने बुड्ढीको दिखाके कहा,—"अम्मा!—माऊं!"

फिर भी; मेरा इशारा पाके घरके लोगोंने ब्राह्मणीसे कोई बात खुलके न कही। वह बड़े शौकसे अपनी वानर-मार्जारमिश्रित कान्ति सबके सामने विकसित करती फिरी।

लोगोंको हंसी देखके एक-एकसे पूछती रही,—"क्यों भाई! तुम सब इतना हंसती क्यों हो?"

मेरे सिखानेके अनुसार ब्राह्मणीसे कह दिया गया,—"सुना नहीं, कि लड़केने क्या कहा? कल रसोईघरमें घुसके कोई बिल्ली जली हुई कड़ाही चाट गई है। यह लड़का समझता है, कि यह काम तुम्हींने किया। लेकिन, दादी! तुम भला ऐसा कर सकती हो?"

यह सुनके बुड्ढी लगी गालियोंका फौवारा छोड़ने। "पाजियो! बदमाशो! लुच्चियो! दीवानियो!" इत्यादि एक सांसमें कह गई। इतने मन्त्र उच्चारण करनेके बाद वह उन 'दीवानियों' और उनके खसम और बेटोंको ले जानेके लिये लगी यमराजको न्योता देने; किन्तु यमराजको उस समय यह न्योता ग्रहण करनेकी जरूरत न दिखाई दी। दादीका चेहरा वैसा ही रह गया। वह उसी मुंहसे रमण बाबूके समाने परोसी हुई थाली लेके गई। रमण बाबूका मारे हंसीके बुरा हाल हुआ। वह हंसी दबाने लगे, तो उन्हें खांसी आ गई। बेचारा उस दिन रसोई खा न सका। सुना, कि दादी जब मालिकके सामने भोजन परोसने पहुंची, तब उन्होंने "निकल जा! मुंह न दिखा" आदि कहके ब्राह्मणीको अपनी कोठरीसे निकाल दिया।

अन्तमें सुभाषिणीको बुड्ढीपर दया आ गई। उसने कहा,—"मेरी कोठरीमें आईना टंगा है। जाके जरा अपना मुंह देख आओ।"

बुड्ढीने जाके मुंह देखा। देखते ही लगी ऊंचे स्वरसे रोने। मैं समझाने लगी, कि मैंने तो बालोंमें मलने कहा था; मुंह और आंखोंपर मलनेके लिये कब कहा था। लेकिन मेरी यह बात वह समझ न सकी। लगी आंचल फैलाके बारंबार मुझे आशीर्वाद करने,—"हे सूरज नारायण!—हे बाबा विश्वनाथ! इस मुई हुड़दङ्गनकी चारपाई निकले!—यह वहां मरे, जहां इसे पानी भी न मिले। इसे मौत क्यों नहीं आती!" इत्यादि।

अन्तमें मेरे लाडले सुभाषिणीके उस लड़केने जलानेकी एक लकड़ी उठाके बुड्ढीकी पीठपर गदसे जमा दी। साथ ही बोल उठा;—"माछी!—माछी!" मार खाके बुड्ढी पछाड़ खाके गिरी और बड़े ही ऊंचे स्वरसे रोने लगी। वह जितना रोने लगी; मेरा लाडला उतना ही तालियां बजा-बजाके नाचने लगा। मैंने झपटके उसे गोदमें उठा लिया और लगी उसका मुंह चूमने।

दसवां बयान।

आशाका दिया।

उसी दिन तीसरेपहर सुभाषिणी मेरा हाथ पकड़के एकान्तमें खींच ले गई। वहां उसने कहा,—"बहन! तुमने एक दिन काले तालकी डकैतीका हाल सुनानेके लिये कहा था; लेकिन आजतक न सुनाया। अब कहो, कि वह डकैती कैसे हुई?"

उसकी यह बात सुनके मैं विचारमें पड़ गई। अन्तमें मैंने साफ-साफ कह दिया, कि वह मेरे ही फूटे हुए भाग्यकी कहानी है। मैंने कहा,—"इतना तो मैं कही चुकी हूं, कि मैं बड़े घरकी बेटी हूं। तुम्हारे ससुर बड़ेआदमी हैं; लेकिन मेरे पिताजी बहुत

ही बड़े आदमी हैं। मेरे पिता आज भी मौजूद हैं; उनका वह अतुल ऐश्वर्य भी मौजूद है। उनके फीलखानेमें आज भी हाथी झूलते हैं। इतना होनेपर भी, मैं उसी काले तालकी डकैतीके प्रतापसे आज रसोईदारन बनके अपने जीवनके दिन बिता रही हूं।"

इतनी बात हो जानेपर हम दोनो कुछ देरतक चुप रहीं। सुभाषिणीने कहा,—"अगर तुम्हें वह कहानी कहनेमें तकलीफ होती हो, तो जाने दो। मैं तो सिर्फ शौकसे सुननेपर तय्यार हो गई थी।"

मैंने कहा,—"घबराओ नहीं; मैं सब सुनाये देती हूं। तुम मुझे जैसा चाहती हो; मुझपर जैसा उपकार किया करती हो, उससे इस बातके कह देनेमें कोई हर्ज नहीं।"

मैंने बापका नाम न बताया; उनके गांवका नाम न बताया। पति या सुसरका नाम न बताया; उनके गांवका भी नाम न बताया। बाकी सब कुछ बता दिया। मेरी कहानी सुनते-सुनते सुभाषिणी रोने लगी। यह कहनेकी जरूरत नहीं, कि अपनी कहानी कहते-कहते मेरी भी आंखोंमें पानी आ गया।

उस दिन इतना ही हुआ। दूसरे दिन सुभाषिणी मुझे फिर एकान्तमें ले गई। उसने कहा,—"अब यह बताओ, कि तुम्हारे बापका नाम क्या है?"

मैंने बता दिया।

सु०। इतना और भी बताओ, कि वह किस गांवमें रहते हैं।

मैंने यह भी बता दिया।

सु०। डाकखाना?

मैं। डाकखाना! डाकखाना ही कहलाता है।

सु०। डाकखाना तो कहलाता है; लेकिन उसका नाम क्या है? गांव या जगहके नामपर डाकखानेका नाम रखा जाता है।

मैं। मैं और कुछ नहीं जानती; सिर्फ इतना जानती हूं, कि डाकखानेको डाकखाना कहते हैं।

सु०। वाह री तुम्हारी समझ। मैं यह पूछती हूं, कि तुम्हारे गांवमें डाकखाना है या नहीं।

मैं। मुझे खबर नहीं।

सुभाषिणी रञ्जीदा हुई। उसने और कुछ न कहा। दूसरे दिन उसीतरह एकान्तमें ले जाके बोली,—"तुम बड़ेघरकी बेटी हो। रसोई कबतक बनाया करोगी? इसमें शक नहीं, कि तुम्हारे जानेसे मुझे बड़ा ही दुःख होगा; लेकिन मैं ऐसी पापिष्ठा नहीं हूं, कि अपने सुखके लिये तुम्हें दुःखी करूं। हमने सलाह की है—"

मैंने बात काटके पूछा,—"हमने? तुमने और किसने?

वह। मैंने और मुन्नीके बापने। हमलोगोंने सलाह की है, कि तुम्हारे बापको चिट्ठी लिखी जाये। इसीलिये कल तुमसे डाकखानेका नाम पूछ रही थी।

मैं। तो क्या तुमने मेरी कही हुई कुल बातें मुन्नीके बापसे कह दीं?

वह। न कहती, तो करती क्या? इसमें हर्ज ही क्या था?

मैं। नहीं; हर्ज तो कुछ न था। फिर क्या हुआ?

वह। अब महेशपुरके पतेसे चिट्ठी भेजी गई है। वहां डाकघर होगा, तो तुम्हारे पिताको जरूर मिल जायेगी।

मैं। हैं; चिट्ठी लिखी भी और भेज भी दी?

वह। हां।

मैं मन ही मन खिल गई। लगी जवाबके दिन गिनने। हिसाब लगाया, कि इतने दिनोंमें चिट्ठी पहुंचेगी और इतने दिनोंमें

जवाब आयेगा। लेकिन समय बीत जानेपर भी जवाब न आया। मेरा दुर्भाग्य!—महेशपुरमें डाकखाना ही न था। उस समय-तक डाकखानोंका अधिक प्रचार हुआ न था। मेरे गांवसे दूर एक डाकखाना था। मैं राजदुलारी; उसका नाम भी जानती न थी। डाकखाना न मिलनेकी वजह रमण बाबूकी चिट्ठी कलकत्तेके बड़े डाकघरकी मार्फत लौट आई।

मैंने फिर रोना शुरू किया। किन्तु रमण बाबूने चैन न लिया। सुभाषिणीने आके मुझे खबर दी,—"अब स्वामीका नाम बताओ।"

उस समयतक मैं लिखना-पढ़ना सीख गई थी। मैंने एक कागजपर स्वामीका नाम लिख दिया। उसने पूछा,—"और ससुरका नाम?"

मैंने उसे भी लिख दिया।

वह। गांवका नाम?

मैंने जबानी बता दिया।

वह। डाकखाना?

मैं। नहीं जानती।

सुना, कि रमण बाबूने मेरी ससुराल भी एक चिट्ठी भेज दी। लेकिन कोई जवाब न आया। बड़ा दुःख हुआ। ऐसे समय मेरे मनमें एक बात आई, जो आशाके कारण पहले आ न सकी थी। अब मुझे याद आया, कि डाकुओंके हाथ पड़ जानेके कारण मेरी जात-पांत मिट्टीमें मिल चुकी थी; मेरे स्वामी और ससुर रमण बाबूकी चिट्ठी पाके भी मेरी खबर लिया न चाहते होंगे। अब मेरे मनमें यह भी आया, कि उन्हें नाहक ही चिट्ठी लिखी गई। मेरी बातें सुनके बेचारी सुभाषिणी भी चुप हो गई।

मुझे विश्वास हो गया, कि अब सुसरालमें मेरा ठिकाना न लगेगा। मेरा आनन्दसे भरा हुआ मन एकबार फिर उजड़ गया।

ग्यारहवां बयान।

छिपी चितवन।

एक दिन सवेरे उठके देखा, कि कुछ हलचल है। रमण बाबू वकील हैं। उनके एक बड़े मुवक्कल थे। कई दिनोंसे खबर थी, कि वह कलकत्ते आये हैं। उनसे मिलने-जुलनेके लिये रमण बाबू और उनके पिता सदा ही आया-जाया करते थे। उन मुवक्कलसे इन लोगोंका रोजगारका भी सम्बन्ध था। आज सुना, कि वह दोपहरको रोटी खाने आयेंगे। इसीलिये रसोईका विशेष बन्दोबस्त किया जा रहा था।

अच्छी रसोई बनाना चाहिये; इसीलिये उसका सारा बोझ मेरे ऊपर रखा गया। बड़ी मिहनतसे मैंने रसोई बनाई। जनानखानेमें खाना होगा। राम बाबू, रमण बाबू और निमन्त्रित मिहमान यह तीनो खाना खाने आये। परोसनेका काम बुड्ढी ब्राह्मणीको सौंपा गया। मैं बाहरी आदमियोंके सामने हुआ न करती थी।

मैं रसोईघरमें बैठी थी; बुड्ढी थाली परोसने गई; ऐसे समय बड़ी हलचल हुई। रमण बाबू बुड्ढीपर नाराज होने लगे। उसी समय एक मजदूरनीने आके मुझसे कहा,—"इसीको कहते हैं, जान-बूझके आदमीकी इज्जत उतारना।"

मैं। क्या हुआ?

वह। बुड्ढी दादी रमण बाबूकी कटोरीमें दाल परोस रही थीं। उन्होंने यह देखके भी हां-हां करते हुए हाथ बढ़ा दिया; सारी दाल उनके हाथपर जा पड़ी। भला इसमें दादीका क्या कुसूर?"

इसी समय बाहरसे फिर आवाज आई। रमण बाबू ब्राह्मणीको धमका रहे थे,—"जब परोसना नहीं जानतीं, तब परोसने क्यों आती हो? क्या घरमें परोसनेवाला और कोई नहीं?"

इसके बाद ही स्वयं मालिकने कहा,—"अब तुम न परोसो। जाके कुमुदिनीको भेज दो।"

मालिका वहां मौजूद न थीं; नहीं तो रोकतीं। इधर स्वयं मालिककी आज्ञा; उसे कौन टाल सकता था? उधर मालिकाका डर था। वह सुनेंगी, तो मुझपर सख्त नाराज होंगी। मैंने पहले ब्राह्मणीको समझाया। उससे कहा,—"इस बार जाना, दादी! तो जरा संभलके खाना परोसना।" लेकिन वह लगी कानोंपर हाथ रखके जानेसे इनकार करने। लाचार होके मैं ही हाथ धोके, मुंह पोंछके, साफ होके, धोती चिकनाके, घूंघट निकालके चली खाना परोसने। मुझे क्या खबर थी, कि मिहमानके आनेपर बात यहांतक बढ़ जायेगी? मैं अपनेको बड़ी ही बुद्धिमती समझती थी; लेकिन बादको जान पड़ा, कि सुभाषिणी बुद्धिमें मेरी नानी थी। वह मुझे बेच भी सकती थी और खरीद भी सकती थी!

खैर; मैं घूंघट निकालके खाना परोसने चली। लेकिन घूंघटसे स्त्रीका चेहरा छिप जाता है; स्वभाव नहीं छिपता। मैंने घूंघटके अन्दरसे मिहमानके चेहरेपर एक निगाह डाल ही तो दी।

उनकी उम्र यही कोई तीस सालकी होगी। रङ्ग गोरा; चेहरेसे सुन्दरता और मर्दानगी झलक रही थी। उनका रूप देखके मेरी आंखोंको चकचौंध लग गई; मैं जरा देरके लिये गाफिल हुई।

तरकारीका कटोरा मेरे हाथ हीमें रह गया। मैं घूंघटके अन्दरसे उनका मुंह देख रही थी; ऐसे समय उन्होंने भी मेरी तरफ निगाह फेरी। उन्हें दिखाई दिया, कि मैं घूंघटके अन्दरसे उन्हें घूर रही थी। उनके देखनेपर मैंने जान-बूझके उनपर किसी तरहका भी कुटिल कटाक्ष नहीं किया। इतना पाप मेरा निष्पाप मन कर ही न सकता था। फिर भी; शायद सांप भी जान-बूझके इच्छापूर्वक फन फैलाया नहीं करता; फैलनेका समय आनेपर वह आप ही आप फैल जाता है। मेरी ही तरह बचारा सांप भी निष्पाप हो सकता है। मेरा भी कुछ ऐसा ही हाल हुआ होगा। शायद उन्होंने मेरी चितवनमें किसी तरहका कटीलापन देख लिया होगा। पुरुषोंका कहना है, कि अंधेरेके दियेकी तरह घूंघटवाली स्त्रीकी चितवन भी बहुत ही सफाईसे दिखाई देती है। जान पड़ता है, कि इसीलिये उन्होंने मेरी चितवनकी काट साफ-साफ देख ली। उसे देखते ही उन्होंने मुस्कुराके गर्दन झुका ली। उनकी वह मुस्कुराहट सिर्फ मैं ही देख सकी। मैं सारी तरकारी उन्हींकी थालीमें परासके वहांसे चली आई।

लौटनेपर मुझे लज्जा भी आई; ग्लानि भी आई। मैं सधवा होके भी जन्म-विधवा बन गई थी। विवाहके समय सिर्फ एकबार पति देवताका दर्शन किया था; इसलिये मेरे मनकी जवानीकी उमङ्गें मेरे मन हीमें भरी रह गई थीं। उतने गहरे पानीमें ढेला फेंकके लहरें पैदा करनेके खयालसे मैं पानी-पानी हो गई। मन ही मन मैंने नारी-जन्मको धिक्कार दिये; अपनेको हजारों धिक्कार दिये। सच तो यह है, कि अपनी इस करतूतको सोचके मन ही मन मैं मर गई!

मन ज़रा शान्त होनेपर मुझे उन मिहमानका चेहरा पहचाना हुआ मालूम हुआ। शक दूर करनेके लिये मैंने आड़से

उसका चेहरा फिर देखा। बहुत ही अच्छी तरहसे देखा। देखके मैंने मन ही मन कहा,—"उफ!—पहचान गई!"

ऐसे समय मालिकने और भी कितनी ही चीजें मंगवाई। मैं उन्हें लेके गई। मुझे दिखाई दिया, कि मिहमानको मेरी निरतनकी वह चोट भूली न थी। उन्होंने मालिकसे पूछा,—"बाबू साहब! आपकी रसोईदारन बड़ी ही होशियार है। इनसे कह दीजिये, कि इन्होंने रसोई बनानेमें कमाल कर दिया है।"

भला मालिक बेचारेको अन्दरकी बातोंकी क्या खबर? उन्होंने सिर्फ इतना ही कह दिया,—"हां; रसोई अच्छी बनाती है।"

मैंने मन ही मन कहा,—"तुम्हारा सर अच्छी बनाती हूं। तुम इन बातोंको क्या समझो!"

मिहमानने छूटते ही कहा,—"ताज्जुबकी बात यह है, कि दो-चार ऐसी चीजें बनाई गई हैं; जैसी मेरे देश हीमें बनती हैं।"

मैंने मन ही मन कहा,—"और भी अच्छी तरहसे पहचान लिया।" सचमुच ही आज मैंने दो या तीन चीजें अपने देशकी जैसी ही बनाई थीं।

मालिकने मिहमानके जवाबमें कहा,—"बनाई होंगी; यह कलकत्तेकी नहीं; बाहरकी है।"

अब उन्हें राह मिल गई। वह एकाएक सर उठाके मुझसे पूछ बैठे,—"कहांकी रहनेवाली हो तुम?"

सबसे पहले मैंने अपने मनसे यही पूछा, कि जवाब दूं या न दूं। स्थिर किया, कि जवाब देनेमें कोई हर्ज नहीं।

फिर यह सवाल पैदा हुआ, कि सच बोलूं या झूठ? स्थिर हुआ, कि झूठ ही बोलना चाहिये। मैं झूठ बोलनेपर किसलिये तय्यार हुई? इसका कारण वही समझ सकते हैं, जो स्त्रियोंके हृदयको चातुर्य्यप्रिय और टेढ़ा मान चुके हैं। मैंने खयाल किया,

कि सच बातें, तो मैं जानती ही हूं; जरूरत देखूंगी, तो कह दूंगी। इस समय झूठ हीसे काम निकाला जाये। यही सब सोच-विचारके मैंने जवाब दिया,—"मेरा मकान काले तालके पास है।"

यह जवाब सुनके वह चौंके। कुछ देर बाद उन्होंने धीमे स्वरसे पूछा,—"कौन काला ताल; वही डाकुओंवाला ?"

मैं। हां; वही डाकुओंवाला!

इसके बाद उन्होंने कुछ न पूछा।

मैं भी कटोरोंसे भरा हुआ थाल हाथमें लिये खड़ी रह गई। मुझे इस बातकी सुध ही न रही, कि वहां मेरे उसतरह ठहरनेकी कोई जरूरत न थी। अबसे कुछ ही क्षण पहले रसोई-घरमें अपनेको जो हजारों धिक्कार दे चुकी थी; उसे बिलकुल ही भूल गई। मुझे यह भी दिखाई दिया, कि अब खानेमें उनका मन नहीं लगता। मालिकने कहा,—"उपेन्द्र बाबू! खाना क्यों नहीं खाते ?" बस!—इतना ही सुनना बाकी था। उपेन्द्र बाबू! नाम सुननेसे पहले ही मैं समझ गई थी, कि वही मेरे जीवनके धन थे!—वही मेरे पति देवता थे!

मैं वहांसे भागके रसोईघरमें पहुंची। मारे आनन्दके हाथकी थाली संभालके रखना भूल गई। वह बहुत जोरसे पत्थरके फर्शपर गिरी। शोरसे सारा मकान गूंज गया। मालिकने अपने भरे हुए मुंहसे आवाज दी,—"अरे क्या हुआ ?—क्या गिरा ?"

उनसे कौन बताता, कि क्यासे क्या हो गया ?

बारहवां बयान।

हंसो उड़नछू।

अबसे इस कहानीमें मुझे अपने पति देवताका भी नाम लिखनेकी जरूरत होगी। इसलिये तुम पांच रसिका बहनें कमिटी जोड़के इस बातका फैसला कर दो, कि मैं अपने स्वामीके लिये कौनसा शब्द व्यवहार करूं। क्या हर जगह 'स्वामी-स्वामी'की रट लगाके पाठक-पाठिकाओंको परेशान बना दूं? या नये सुधारके अनुसार स्वामीको 'उपेन्द्र' लिखूं? या प्राणनाथ, प्राण-कान्त, प्राणेश्वर, प्राणपति और प्राणाधिकका तूफान बहा दूं? हाय! इस अभागे देशमें ऐसा कोई शब्द ही नहीं, जिससे उन स्वामीका सम्बोधन किया जा सके, जो सबकी अपेक्षा अधिक प्रिय हैं और जिनके बुलानेकी इच्छा पल-पलपर हुआ करती है। मेरी एक सखी अपने पतिको 'बाबू' कहा करती थी; लेकिन जब यह नाम उसे मीठा जान न पड़ा, तो वह लगी उन्हें 'बाबूराम' पुकारने। मेरी भी इच्छा हुई, कि मैं अपने पति देवताको इसी नामसे बुलाया करूं।

कटोरोंसे भरी हुई थाली पटकनेके बाद मैंने मन ही मन स्थिर किया,—"जब प्रभुने मेरा खोया हुआ धन मेरे सामने कर दिया है, तो मैं भी उसे आसानीसे न छोड़ूंगी। लड़कियोंजैसी लज्जाके दबावसे इस मिले हुए सुअवसरको हाथसे जाने न दूंगी।"

यह सोचके मैं ऐसी जगह खड़ी हुई, जिस जगह खानेकी कोठरीसे मर्दानेमें जानेवाले आदमी अगर देखना चाहें, तो मुझे देख सकें। मैंने मन ही मन कहा,—"अगर वह झांकते-ताकते हुए मर्दानेकी ओर न जायें, तो मैं अपना नाम बदल डालूं।" माफ करना। वहां ठहरके मैंने और एक हरकत की। अपने सरका

कपड़ा इतना पीछे हटा दिया, कि मेरे सरके कुछ बाल दिखाई देने लगे। इस समय यह बात लिखने और पढ़नेमें लज्जा आती है, लेकिन उस समय मुझे इतनी बड़ी बेहयाई करते हुए ज़रा भी सङ्कोच न हुआ। उस समय मेरी दशा ही वैसी थी। जिस तनपर बीतती है, वही जानता है। उस समयकी मेरी दुर्दशाको पाठक-पाठिकायें कैसे समझ सकती हैं?

खैर; खाना समाप्त होनेपर सबसे पहले रमण बाबू मर्दानेकी तरफ गये। वह चारों ओर इसतरह देखते हुए गये, मानो वह जानना चाहते थे, कि कौन कहां है? इसके बाद खुद मालिक गये। वह बेचारे बिना इधर-उधर देखे सिर झुकाये चुपचाप चले गये। अन्तमें मेरे स्वामीराम बरामद हुए। वह हर कदमपर आंखोंसे किसीको ढूंढते हुए चले। मुझपर उनकी निगाह पड़ी; या मैंने ही अपनेको उनकी निगाहोंके सामने कर दिया। क्योंकि मैं खूब समझ रही थी, कि वह मुझीको ढूंढ रहे थे। इसके आगे क्या कहूं?—कहते बड़ी ही लज्जा आती है। मेरी और उनकी निगाहें जैसे ही मिलीं; वैसे ही मैंने उनपर चितवनका एक पैना तीर चला दिया। जो भगवान् और समाज दोनोंके सामने मेरे स्वामी थे, उनपर ज़रा कसके तीर चलानेमें भी सङ्कोच न हुआ। इसमें शक नहीं, कि प्राणनाथ तड़पते हुए जनानखानेसे मर्दानेकी तरफ सिधारे।

इसके बाद ही मैं गोविन्दीकी शरण लेनेपर तय्यार हुई। एकान्तमें बुलाते ही वह हंसती हुई मेरे पास आई। मेरे पास पहुंचनेपर वह खिलखिलाके हंसी और बोली,—"परोसनेके समय ब्राह्मणी दादीके नखरे देखे थे?" मेरे जवाब देनेसे पहले ही वह लगी फिर ज़ोरसे हंसने।

मैं । सब मालूम है। लेकिन मैंने तुम्हें इसके लिये नहीं बुलाया है। अगर तुम मुझे कुछ भी चाहती हो, तो मेरा एक उपकार करो। ज़रा इस बातकी खबर ले आओ, कि यह मिहमान यहांसे कब जायेंगे।

यह सुनते ही गोविन्दीकी हंसी एकाएक उड़नछू हो गई। उसकी हंसी मानो सूरजकी किरनोंमें आनेवाला कुहरा बनके उड़ गई। गोविन्दीने गम्भीर भावसे कहा,—"हैं; क्या तुम्हें यह रोग भी है ?"

मैं हंसी। मैंने कहा,—"आदमीके सभी दिन बराबर नहीं जाते। अब तू अपनी उपदेशावली भाड़में झोंक; यह बता, कि मुझपर यह उपकार किया चाहती है या नहीं ?"

गो०। साफ़-साफ़ कहूं ? मैं यह काम कभी न करूंगी।

मेरा हाथ खाली न था। तनखाहके रुपये मेरी कमरमें थे; उनमें पांच रुपये गिनके गोविन्दीके हाथ रखे। मैंने कहा,— "गोविन्दी! तुझे यह काम करना ही पड़ेगा।"

गोविन्दी वह रुपये फेंकनेपर तय्यार हुई। पीछे कुछ समझ-के फेंकनेके बदले मिट्टी रखनेकी टोकरीमें रख दिये। इसके बाद उसने मुंह बिगाड़के बड़े ही गम्भीर भावसे कहा,—"जीमें तो यही आया, कि तुम्हारे रुपये फेंक दूं। लेकिन फेंकनेसे बड़ा शोर होता; तुम्हारी बड़ी बदनामी भी होती;—इसीलिये फेंकने बदले यह रख दिये हैं; उठा लो। मेरे सामने फिर ऐसी बातें न करना।"

मैं रोने लगी। जो एतबार गोविन्दीका था; वह एतबार और किसीका न था; मैं इस चिन्तासे रो पड़ी, कि अब मैं किसके पास जाऊं। मेरी रुलाईका असली अर्थ गोविन्दी समझ न सकी। फिर भी; उसके मनमें दया आ गई। उसने

कहा,—"रोती क्यों हो; क्या उस आदमीसे तुम्हारी पुरानी जान-पहचान है?"

उसकी यह बात सुनके पहले तो मेरे मनमें यही आया, कि मैं उसे सारी बातें कह सुनाऊं। इसके बाद मैंने विचार किया, कि उसे मेरी बातोंका विश्वास न होगा; वह व्यर्थके लिये कोई बड़ा हलचल उपस्थित कर देगी। खूब सोचने-विचारनेपर अन्तमें यहा स्थिर हुआ, कि बिना सुभाषिणीकी मददके अपना काम चल नहीं सकता। वही मेरी सखी है; वही मेरी रक्षाकारिणी है,—उसीको सब बातें सुनाके सलाह लूं। मैंने गोविन्दीसे कहा,—"जान-पहचान मामूली नहीं; बड़ी ही गहरी है। कुल बातें सुना दूं, तो तेरी अक्ल कलाबाजी खाने लगे। इसीलिये अभी मैं कुछ कहा नहीं चाहती। फिर भी; इतना मैं कहे रखती हूं, कि इस काममें कोई बुराई नहीं।"

इतना कहके मैं विचारमें पड़ गई। इस काममें मेरे लिये कोई बुराई न थी; लेकिन गोविन्दीके लिये? उसके लिये बुराई जरूर थी। ऐसी दशामें उस बेचारीको इस कीचमें फंसाना मुनासिब न था। इसके बाद मन कुतर्क करने लगा। जिसके सरपर मुसीबत मंडलाती है; वह उद्धारके लिये कुतर्ककी राह पकड़ता है। मैंने गोविन्दीको फिर समझाया,—"मैं जो कुछ कहती हूं; उसके करनेमें कोई भी बुराई नहीं।"

गो०। क्या तुम उस आदमीसे मिला चाहती हो?

मैं। हां।

गो०। कब?

मैं। रातको; जब सारा मकान सो जाये, तब!

गो०। एकान्तमें?

मैं। हां एकान्तमें।

गो०। अब तो मैं इस कामके पास भी न फटकूंगी।

मैं। और अगर बहूजी तुझे हुक्म दें?

गो०। पगली तो नहीं हो गई हो? बहूजी कुल-वधू हैं,—सती-लक्ष्मी हैं; वह ऐसी बातें कैसे सुन सकती हैं?

मैं। अच्छा; अगर वह तुझे न रोकेंगी, तो तू मेरा काम कर देगी?

गो०। कर दूंगी; लेकिन तुम्हारे रुपये न लूंगी। तुम अपने रुपये अपने पास ही रक्खो।

मैं। रुपये इस समय मैं रखे लेती हूं; लेकिन देखना, समयपर गायब न हो जाना।

इसके बाद मैं अपनी आंखें पोंछके सुभाषिणीकी खोजमें निकली। वह एकान्तमें मिल गई। मुझे देखते ही सुभाषिणीका वह सुन्दर मुखड़ा सबेरेके कमलके फूलकी तरह आनन्दसे खिल उठा। उसका सारा अङ्ग पारिजातकी फूली हुई डाल या चन्द्रोदय होनेपर नदीके जलकी तरह आनन्दसे प्रफुल्ल हो रहा। उसने हंसके मेरे कानसे अपना मुंह लगाके कहा,—"क्यों; पहचान लिया?"

मैं आकाशसे धरतीपर गिरी। मैंने कहा,—"हैं; तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

सुभाषिणीने मुंह मोड़के कहा,—"मालूम होनेकी अच्छी कही!—क्या तुम यह समझती हो, कि तुम्हारा उड़ा हुआ तोता आप ही आप तुम्हारे हाथपर आ बैठा? अरी भोरी! हमीं लोगोंने आकाशमें जाल बिछाया था; हमारी ही हिकमतसे तोता पकड़ा गया है।"

मैं। हम कौन?—तुम और तुम्हारे पति?

वह। नहीं तो क्या? याद है, कि एक दिन तुमने अपने स्वामी, ससुर और उनके गांवका नाम मुझसे बताया था? तुम्हारे बताये हुए नाम सुनते ही मुन्नीके बाप पहचान गये। तुम्हारे स्वामीका एक मुकद्दमा मुन्नीके बापके हाथ था। उन्होंने उसीके बहाने तुम्हारे स्वामीको कलकत्ते बुलवाया। इसके बाद यहां खाना खिलानेकी व्यवस्था की गई।

मैं। इसके बाद बुड्ढीकी जलती हुई दाल जबर्दस्ती अपने हाथपर ली गई।

वह। हां; यह भी हमलोगोंकी एक चाल थी।

मैं। तो क्या मेरी भी खबर उन्हें दे दी गई है?

वह। भला इतनी बड़ी हिमाकत भी की जा सकती थी? तुम्हें तो डाकू पकड़ ले गये थे न? फिर तुम्हारा पता उन्हें कैसे दिया जा सकता था? कौन जानता है, कि तुम्हारा हाल सुन लेनेपर वह तुम्हें अपने घर ले जाते या नहीं। मुन्नीके बापका कहना है, कि अब अपना काम तुम अपने हाथों बना लो।

मैं। मैं भी इसी फिक्रमें हूं। काम बन गया, तो अच्छा; नहीं तो गङ्गामें डूब मरूंगी! लेकिन जबतक उनसे भेंट न होगी, तब-तक मैं क्या कर सकती हूं?

वह। कब और कहां भेंट किया चाहती हो?

मैं। तुम लोगोंने जब इतना किया है, तब थोड़ी मदद और दो। वह अगर अपने डेरेपर लौट जायेंगे, तो उनसे भेंट न होगी। वहां मुझे कौन ले जायेगा और कौन उनसे भेंट करायेगा? अगर भेंट करना ही है, तो यहीं करना चाहिये।

वह। कब?

मैं। आज रातको; सबके सो जानेपर।

वह। कृष्णाभिसारिका बनोगी?

मैं। उपाय क्या है? हर्ज ही क्या है? मिलूंगी, तो अपने देवता हीसे मिलूंगी न?

वह। नहीं; हर्ज तो कुछ भी नहीं। लेकिन इसके लिये उन्हें रातभरके लिये रोक रखनेकी जरूरत है। पास ही उनका डेरा है। वह रोके कैसे जायेंगे? देखूं; मुन्नीके बाप क्या कहते हैं!

सुभाषिणीने रमण बाबूको बुलवाया। उनसे उसने जो बात-चीत की; वह लौटके मुझे कह सुनाई। उसने कहा,—"मुन्नीके बाप इस समय मुकद्दमेके कागजात न देखेंगे। किसी बहाने इस कामको टाल देंगे। शामके बादका समय इस कामके लिये ठीक किया जायेगा। शामके बाद तुम्हारे स्वामीके आनेपर कागज-पत्र देखे जायेंगे। इस काममें कुछ रात हो जायेगी। उस समय तुम्हारे स्वामीसे भोजन करनेके लिये जिद की जायेगी। लेकिन इसके बाद तुम्हें अपना गुण दिखानेकी जरूरत होगी। मुशकिल एक है। उन्हें रातको यहां रखनेके लिये कौनसा बहाना किया जाये?"

मैंने कहा,—"इसका उपाय मैं खुद ही कर लूंगी। सारा बन्दोबस्त अभीसे कर लिया है। टेढ़ी चितवनके दो-चार तीर कस-कसके चला दिये हैं; उन्होंने भी वह सब लौटा दिये हैं। आदमी अच्छे स्वभावके मालूम नहीं होते। मुशकिल यह है, कि मैं उनके पास अपना पैगाम किसकी मार्फत भेजूं। मैं एक पुर्जा लिख दूंगी। कोई उन्हें दे आवे, तो सारा झगड़ा मिट जाये।"

वह। किसी नौकरके हाथ भेज दो।

मैं। जन्मभर स्वामीसे न मिलना मञ्जूर है; लेकिन किसी मर्दके हाथ वह पुर्जा भेजना मञ्जूर नहीं।

वह। अच्छी बात है। तो किसी मजदूरनी हीके हाथ भेज दो।

मैं। ऐसी विश्वासी मजदूरनी कौन है? उसने जो कहीं कोई बेवकूफी कर दी, तो बना-बनाया खेल बिगड़ जायेगा।

वह। क्या गोविन्दीका भी तुम विश्वास किया नहीं चाहतीं?

मैं। गोविन्दीसे मैंने कहा था; लेकिन वह इतनी ईमानदार है, कि बिगड़ उठी। हां; तुम आज्ञा दो, तो और बात है। लेकिन भला मैं तुमसे ऐसी आज्ञा देनेके लिये कैसे कह सकती हूं? मैं अपनी मुसीबत आप झेलूंगी। दूसरोंको इसमें क्यों फंसाऊं?

इतना कहते-कहते मैंने अपने आंसू पोंछे।

वह। गोविन्दीने मेरे बारेमें क्या कहा?

मैं। अगर तुम मना न करोगी, तो वह चली जायेगी।

सुभाषिणी कुछ देरतक चुप रही। अन्तमें उसने कहा,—"शामके बाद ही उसे इस कामके लिये मेरे पास भेज देना।"

तेरहवां बयान।

इम्तिहान।

शामके बाद मेरे स्वामी मुकदमेके कागज़-पत्र लेके रमण बाबूके पास आये। यह खबर पाके मैंने एकबार फिर गोविन्दीकी मिन्नत-खुशामद की। गोविन्दीने भी फिर वही बात कही,—"बहूजी अगर मना न करेंगी, तो मैं यह काम कर डालूंगी। समझूंगी; कि इसमें कोई बुराई नहीं।"

मैंने कहा,—"जा, तुझे बहूजीने बुलाया है।"

यह बात सुनते ही गोविन्दी कुछ हंसती हुई सुभाषिणीकी ओर गई। मैं बैठके उसका इन्तज़ार करने लगी। कुछ देर बाद वह नङ्गे सर, अपना धोती; बाल और हंसी तीनोंको संभालती

हुई मेरे पास पहुंचके हंसने लगी। मैंने पूछा,—"इतना हंसती क्यों है?"

वह। तुमने तो मुझे सूलीपर भेज दिया था। भला; ऐसी जगह भी कोई किसीको भेजा करता है?

मैं। क्यों; क्या हुआ?

वह। मैं जानती हूं, कि बहूजीकी कोठरीमें झाड़ू नहीं रहती, मैं झाड़ू लेके उनकी कोठरी साफ कर आया करती हूं। आज वहां जाके देखा, तो बहूजीके पास ही मुझे एक झाड़ू रखा हुई दिखाई दी। मैंने जैसे ही जाके पूछा,—'आऊं?—जानेमें कोई ऐब तो नहीं?' वैसे ही बहूजी वह झाड़ू उठाके मुझे मारने दौड़ीं। भागसे भागना जानती हूं; इसीलिये भागके जान बचाई। नहीं तो पीठका चमड़ा सलामत न रहता। भागते-भागते भी एक झाड़ू पीठपर पड़ ही गई। जरा देखना तो सही; चोट गहरी तो नहीं आई है?

गोविन्दीने हंसते-हंसते अपनी पीठ खोली। चोट तो चोट; वहां एक दाग भी न था। इसके बाद उसने कहा,—"अब अपना काम बताओ।"

मैं। झाड़ू खा चुकनेपर काम पूछती है?

वह। बहूजीने झाड़ू मारी है; लेकिन काम करनेके लिये मना नहीं किया है। मैं कही चुकी हूं, कि वह मना न करेंगी, तो तुम्हारी बात मान लूंगी।

मैं। झाड़ूसे मारना क्या मना करना नहीं?

वह। मार भी कई तरहकी होती है। बहूजीने जब झाड़ू उठाई थी, तब उनके होंठोंके एक किनारे जरासी मुस्कुराहट दिखाई दी थी। अब बहस रहने दो; अपना काम बताओ।

इसपर मैंने कागजके एक टुकड़ेपर लिखा,—"आपको मन-प्राण दे चुकी हूं। क्या ग्रहण कीजियेगा? अगर कीजिये, तो आज रातको इसी मकानमें सोइये। अपनी कोठरीका द्वार अन्दरसे बन्द न कीजियेगा। वही रसोइदारन।"

कागजके टुकड़ेको माड़-माड़के गोविन्दीके हाथ रखा। उससे कह दिया,—"भागियो नहीं; जरा ठहर जा!" इसके बाद जाके सुभाषिणीसे कहा,—"जरा मुन्नीके बापको बुला भेजो। उनके आनेपर इधर-उधरकी कोई बात कहके उन्हें बिदा कर देना।" सुभाषिणीने अपने पतिको बुलवाया। उन्हें जनानखानेमें देखते ही मैंने गोविन्दीसे कहा,—"हां;—अब जा और उन मिहमानको यह कागज दे आ।" गोविन्दी चली गई। कुछ ही देरमें पलटके उसने मेरा वह पुर्जा मेरे हाथ वापस दिया। उसके एक कोनेमें इतना ही लिखा था,—"अच्छा।" यह जवाब पढ़के मैंने गोविन्दीसे कहा,—"जब तूने इतना काम किया है, तब एक काम और कर। आधी रातको मेरे साथ चलके मुझे उनकी कोठरी दिखा आ।"

वह। अच्छा; लेकिन इसमें कोई हर्ज तो नहीं?

मैं। कोई हर्ज नहीं। वह पिछले जन्ममें मेरे स्वामी थे।

वह। पिछले जन्ममें या इसी जन्ममें? माई!—तुम्हारी पहेलियां तो मेरी समझ हीमें नहीं आतीं।

मैंने हंसके कहा,—"चुप!"

गोविन्दीने भी हंसके कहा,—"अगर इसी जन्मके होंगे, तो पांच सौ रुपये इनाम लूंगी; नहीं तो बहूजीकी झाड़ूकी चोट मुझे न भलेगी।"

मैंने सुभाषिणीके पास जाके उससे यह सब बातें कहीं। सुभाषिणी साससे कह आई, कि आज कुमुदिनीकी तबीयत अच्छी नहीं; वह रसोई बना न सकेगी; ब्राह्मणीको यह काम सौंपा जावे।

ब्राह्मणी रसोई बनाने लगी। सुभाषिणीने मुझे अपनी कोठ-रीमें बुलाके अन्दरसे किवाड़ बन्द कर दिये। मैंने पूछा,—"यह क्या?—कैद क्यों करती हो?" सुभाषिणीने जवाब दिया,—"इसलिये, कि आज तुम्हें सिंगारना है!"

इसके बाद उसने मेरा मुंह धुलवाके अपने हाथों पोंछा। बालोंमें खुशबूदार तेल देके मेरा जूड़ा बांध दिया। जूड़ेमें एक जड़ाऊ चांद लगाके बोली,—"इस चांदका दाम एक हजार रुपये है। समय हो, तो मेरे यह हजार रुपये वापस लौटा देना।" इसके बाद वह अपने पहननेकी एक कीमती साड़ी मुझे जबर-दस्ती पहनानेपर तय्यार हुई। वह जब मेरी देहकी धोती खींचके फेंकने लगी, तब लाचार होके मैंने वह साड़ी पहन ली। इसके बाद वह अपने जेवर लाके मुझे पहनानेपर तय्यार हुई। मैंने कहा,—"बस! अब तुम्हारी जिद न चलने दूंगी। मैं यह जेवर कभी न पहनूंगी।"

बड़ी गुलखप हुई। जब मैं किसी तरह भी राजी न हुई, तब उसने कहा,—"तब दूसरे जेवर पहनो। मैंने पहले होसे मंगा रखे हैं।"

यह कहके सुभाषिणी एक सन्दूक उठा लाई। उसमें फूलोंकी कलियोंके जेवर रखे हुए थे। कलियोंके कड़े; बाजूबन्द; झुमके आदि मुझे पहनाये गये। इसके बाद उसने सोनेकी एक नई इय-रिङ्ग निकालके कहा,—"इसे मैंने तुम्हें देनेके लिये अपने रुप-येसे मुन्नीके बापसे मंगवाया है। जब इसे पहना करना, तो मुझे याद कर लेना। कौन जानता है, बहन! कि फिर कभी तुमसे भेंट होगी या नहीं और होगी भी, तो कब। इसके लेनेसे इनकार न करना।"

इतनी बात कहके सुभाषिणी रो पड़ी। मेरी भी आँखें सजल हो गईं; मेरे मुंहसे 'ना' न निकली। सुभाषिणीने इयरिङ्ग पहना ही दी।

मेरा श्रृङ्गार समाप्त होनेपर मजदूरनी सुभाषिणीके बच्चेको हमारी कोठरीमें पहुंचा गई। बच्चेके गोदमें बैठाके मैं उससे बातें करने लगी। वह मेरी बातें सुनते-सुनते सो गया। इसके बाद मेरे मनमें एक दुःखकी बात आई। मैंने सुभाषिणीसे कहा,—"बहन! मैं आनन्दित जरूर हुई हूं; लेकिन मेरा मन अन्दर ही अन्दर उनकी निन्दा कर रहा है। मैं तो पहचान गई हूं, कि वह मेरे स्वामी हैं; इसीलिये मैं जो कुछ कर रही हूं; उसमें मुझे बुराई दिखाई नहीं देती है। लेकिन इसमें शक नहीं, कि वह मुझे पहचान नहीं सके हैं। मैंने उन्हें उनकी नौजवानीमें देखा था; इसलिये मुझे उनके पहचाननेमें कुछ ही देर लगी। उन्होंने मुझे जब देखा था; तब मैं ग्यारह सालकी लड़की थी। अब वह मुझे पहचान ही कैसे सकते हैं? इसलिये यह बात मनको बहुत ही खटकती है, कि वह मुझे पराई स्त्री मानके भी मुझपर लट्टू हो गये हैं। फिर भी; वह पति हैं,—मैं पत्नी। उनकी बुराई करना मेरा धर्म नहीं। मैंने मन ही मन प्रण कर लिया है, कि अगर मुझे अवसर मिलेगा, तो मैं अपना यह स्वभाव छोड़ दूंगी।"

सुभाषिणीने कहा,—"बहन! तू तो अन्धेर करती है। जरा यह भी तो समझ, कि इस समय उनके स्त्री नहीं।"

मैं। मेरे भी तो स्वामी नहीं।

वह। बड़े रङ्ग दिखाती है। अरी भोरी! क्या स्त्री-पुरुष समान होते हैं? क्या तू भी कमसरियटके कामसे रुपये कमा सकती है?

मैं। पुरुष अगर बच्चे जननेपर तय्यार हों, तो मैं भी कमसरियटमें काम करनेके लिये तय्यार हूं। जिसमें जो शक्ति होती

है ; वह नहीं कर सकता है। क्या मर्द अपना मन वश कर ही नहीं सकते ?

वह। बहन ! पहले अपना घर तो बसा ले ; फिर उसके उजाड़नेकी चिन्ता कीजियो। इस समय इन बातोंकी जरूरत नहीं। सबसे पहले तू इस बातका इम्तिहान दे, कि तुझे स्वामीका मन वश करनेका गुण आता है या नहीं। नहीं तो तेरा ठिकाना कहां लगेगा ?

मैंने जरा चिन्तासे कहा,—"इस गुणके सीखनेकी मुझे कभी जरूरत ही नहीं हुई।"

वह। तो मुझसे सीख। याद रख, कि मैं इस विद्याकी पण्डिता हूं।

मैं। यादकी क्या बात है ; दिन-रात देख ही रही हूं।

वह। तो सीख। मान ले, कि तू पुरुष है। अब देख ; मैं तुझे किसतरह रिझाती हूं।

यह कहके कामिनीने जरा घूंघट निकाल लिया और मुझे एक बीड़ा पान लाके दिया। वैसा बीड़ा बनाके वह सुन्नीके बापको ही दिया करती थी ; और किसीको नहीं। और तो क्या ; अपने लिये भी वह वैसा बीड़ा न बनाती थी। रमण बाबूका पेचवान वहीं कोठरीमें रखा था ; पेचवानपर चिलम भी थी। सुभाषिणी उस बिना आगकी चिलमको फूंकके पेचवान मेरे सामने लाई। इसके बाद कलियोंसे गुंथा हुआ एक पङ्खा मुझे झलने लगी। उसके हाथकी चूड़ियां और जेवर चमकने और बजने लगे।

मैंने कहा,—"बहन ! यह सब तो मजदूरनियोंके काम हैं। क्या यही सब दिखानेके लिये मैंने आज उन्हें रोक रखा है ?"

वह। हम दासियां नहीं, तो और क्या हैं ?

मैं। जब वह प्रेम दिखायेंगे, तो मैं भी दासीका भाव दिखा दूंगी। उस समय उनके लिये पान बना दूंगी; उन्हें पङ्खा झल दूंगी;—सब कुछ कर दूंगी। लेकिन इस समय इन बातोंकी जरूरत नहीं।

इसपर सुभाषिणी हंसती हुई मेरे पास आ बैठी। मेरा हाथ अपने हाथमें लेके मीठी-मीठी बातें करने लगी। पहले तो पान चबाती और झूमर झमकाती हुई इसतरह बातें करती रही; मानो अपने पतिको ही रिझा रही हो। इसके बाद उसने मेरी बात छेड़ी और सखीभावसे बातें करने लगी। मेरे आनेका जिक्र छिड़ा। उसकी आंखें सजल हो गईं। यह देखके मैंने उसका जी बहलानेको कहा,—"इसमें शक नहीं, कि तुमने बहुतेरे अस्त्र-शस्त्र चलानेकी विद्या मुझे सिखा दी है; लेकिन सवाल यह है, कि क्या इस समय यह सब उनपर अपनी काट दिखा सकेंगे?"

सुभाषिणीने हंसके कहा,—"तो मेरा वह ब्रह्मास्त्र चलाना सीख ले, जो कभी बेकार ही नहीं जाता।"

इतना कहके हुड़दङ्गनने मेरे गलेमें बांहें डालके मेरा मुंह चूम लिया। एक बूंद अश्रुजल मेरे गालपर आ गिरा। मैंने अपनी आंखोंका पानी आंखों हीमें रोकके कहा,—"बहन! यह तो बिना सङ्कल्पकी दक्षिणा हो गई!"

सुभाषिणीने कहा,—"बड़ी ही बेहान्त है। अब अपनी पढ़ाईका इम्तिहान दे। समझ ले, कि मैं तेरा पति हूं!" यह कहके वह सोफापर बड़े ठाटसे टेढ़ गई। बेचारीको हंसी आने लगी, तो लगी मुंहमें कपड़ा ठूंसने। हंसी रुकनेपर उसने मुझे एकबार मुंह बिगाड़ और तेवर बदलके देखा; इसके बाद फिर लगी हंस-हंसके लोटने। हंसी रुकनेपर बोली,—"मुंह क्या देखती है;—दे इम्तिहान!" इसपर मैंने सुभाषिणीको अपनी वह विद्या

दिखाई, जिसका परिचय पाठकोंको आगे चलके मिलेगा । सुभाषिणीने मुझे धकेलके सोफासे उठा दिया । और कहा,—"चल हट, देहातन ! तुझमें जरा भी शऊर नहीं ।"

मैं । क्यों ?

सुभाषिणीने कहा,—"अरी ! ऐसी चितवन मर्दको मार ही डालती है ।"

मैं । तो मैं अपनेको इम्तिहानमें पास समझूं ?

वह । बेशक पास ! कमसरियटके बापने भी ऐसी रसीली और बांकी चितवन देखी न होगी । तुम्हारे स्वामीजीका दिमाग घनचक्कर बन सकता है; थोड़ा चन्दनका तेल पहले हीसे लेती जाना ।

मैं । अच्छा; अब दूसरी तरफ ध्यान दो । आवाजसे जान पड़ता है, कि मर्दोंने खाना खा लिया । रमण बाबूके आनेका समय हुआ; अब मैं जाती हूं । जितनी विद्यायें सिखाई हैं; उनमे यह मुखचुम्बन कभी न भूलूंगी । जरा एकबार आजमा लूं ।

यह कहके मैंने सुभाषिणीके गलेमें और उसने मेरे गलेमें भुजायें डाल दीं । दोनों एक-दूसरेको गले लगा और मुंह चूमके रोने लगीं । देरतक रोती रहीं । बड़ा ही दुर्लभ प्रेम था । सिवा सुभाषिणीके इतना प्रेम दूसरा कौन दिखा सकता था ? शायद मरनेके बाद भी सुभाषिणीको भूल न सकूंगी ।

चौदहवां बयान ।

मेरी प्रतिज्ञा ।

मैं गोविन्दीको सहेजती हुई अपनी सोनेकी कोठरीमें पहुंची । सचमुच ही मर्दोंका खाना समाप्त हो चुका था । ऐसे समय बड़ा

शोर हुआ। किसीने पङ्खेके लिये आवाज लगाई, तो कोई पानी या दवा लानेके लिये दौड़ा। गोविन्दी हंसती हुई मेरे पास आई। मैंने पूछा,—"माजरा क्या है?"

वह। उन्हीं तुम्हारे मिहमानने बेहोश होनेकी मस्लहसियत दिखाई थी।

मैं। फिर क्या हुआ?

वह। अब होशमें आ गये हैं!

मैं। लेकिन—

वह। कमजोरी बहुत है; डेरेकी तरफ सिधार न सकेंगे; बैठककी बगलकी कोठरीमें आराम करेंगे।

समझ गई, कि यह चाल चली गई है। बुलके बोली,—"अंधेरा होते ही मेरे पास आना।"

वह। लेकिन वह बेचारे तो बीमार हैं!

मैं। बीमार नहीं; तेरा सर हैं। चल!—हट सामनेसे!

गोविन्दी हंसती हुई चली गई। सारा घर जब अंधेरेमें सो गया, तब गोविन्दी मुझे अपने साथ ले जाके उनकी कोठरीका दर्वाजा दिखा आई। मैं अन्दर दाखिल हुई। मुझे दिखाई दिया, कि वह अकेले लेटे हुए थे। जरा भी बीमार मालूम न होते थे। कमरेमें दो बड़े-बड़े लम्प जल रहे थे; वह आप भी अपने रूपसे उजेला फैला रहे थे। मैं भी तोरोंसे सुहागिन बनी हुई थी; मेरा सारा शरीर आनन्दसे भर गया।

जवानीमें स्वामीसे पहली भेंटका सुख कैसे बताया जा सकता है? मैं बड़ी बोलनेवालियोंमें हूं; फिर भी, उस समय मेरी जबान खोलनेपर भी न खुली। गला रुंधने लगा। सारा बदन थर्राने लगा। दिल धड़क उठा। गला सूखने लगा। अपनेको इस दशामें पाके मुझे रुलाई आ गई!

मेरी रुलाईका कारण उनकी समझमें न आया। उन्होंने कहा,—"हैं;—रोती क्यों हो? मैंने तुम्हें नहीं बुलाया; तुम अपनी खुशीसे यहां आई हो; फिर रोनेकी क्या जरूरत?"

उनकी यह बात वज्रजैसी जान पड़ी। उन्होंने मुझे कुलटा समझ रखा था। आंखोंकी जलन और भी बढ़ गई। मनमें तो आया, कि उसी समय उन्हें खुलके अपना परिचय दे दूं; लेकिन फिर यह विचार आया, कि उन्हें उसका विश्वास ही न होगा। वह समझेंगे, कि काले तालकी रहनेवाली यह स्त्री भेद पाके अपनेको मेरी वही स्त्री बना रही है। लाचार! आंखें-मुंह पोंछके मैं उनसे बातें करने लगी। कितनी ही बातोंके बाद वह पूछ बैठे,—"मुझे क्या खबर थी, कि काले तालमें ऐसी सुन्दरियां पैदा होती हैं?"

मैंने सर उठाके उनकी आंखोंसे आंखें मिलाईं, तो वह मुझे बड़े आश्चर्यके साथ देखते हुए दिखाई दिये। उनकी बातके जवाबमें मैंने कहा,—"लेकिन काले तालमें मेरा सौन्दर्य नहीं· आपकी स्त्रीका ही रूप बखाना जाता है।" इस बहाने उनकी स्त्रीका जिक्र छेड़के मैंने पूछा,—"क्या उनकी कोई खबर मिली है?"

वह। कुछ भी नहीं। तुम्हें देशसे यहां आये कितने दिन हुए?

मैंने कहा,—"आपकी स्त्रीवाली दुर्घटना होनेके बाद ही मैं काले तालसे चली थी। क्या आपका दूसरा विवाह हो गया?"

वह। नहीं।

मैंने लम्बी-लम्बी बातें छेड़ीं; वह उनके जवाब दे न सके। मैं स्त्रीस्वभाव थी; अभिसारिका बनके उनके पास गई थी; भला मेरी बातोंके जवाबकी फुर्सत उन्हें कहां? वह घबरा-घबराके मुझे

देखते रहे । सिर्फ एकबार उनके मुंहसे इतना निकला,—"आदमीमें इतना रूप मैंने कभी देखा न था।"

मैं यह सुनके आनन्दित थी, कि मेरे कोई सौत नहीं। मैंने कहा,—"यह आपने खूब किया, कि अपनी शादी ही नहीं की। नहीं तो अगर आपकी वह खोई हुई स्त्री मिल जाती, तो दोनो सौतोंमें बड़े झगड़े होते।"

उन्होंने मुसकुराके कहा,—"झगड़ेका कोई डर नहीं। वह स्त्री अगर मिल भी गई, तो उसे घरमें रखना मुशकिल है। अब उसकी जाति-पांतिका क्या ठिकाना!"

मेरे सरपर मानो बिजली गिरी। मेरी लाखो आशाओंपर पानी फिर गया। मैं समझ गई, कि मेरा परिचय पानेपर भी वह मुझे अपने घरमें न रखेंगे। मेरा यह नारी-जन्म वृथा हुआ।

मैंने बड़ी हिम्मतसे पूछा,—"अगर आपकी वह स्त्री इसी समय यहां आ जाये, तो आप क्या करेंगे?"

उन्होंने बड़े दुःखसे कहा,—"त्याग कर दूंगा!"

उफ!—इतनी निर्दयता? मैं चुप हो गई। पृथिवी मुझे घूमती हुई मालूम हुई।

उसी रातको मैंने स्वामीकी सेजपर बैठके उनकी अनिन्दित मोहनमूर्त्ति निरखते हुए मन ही मन प्रतिज्ञा की,—"अगर यह मुझे अपनी स्त्रीके रूपमें ग्रहण न करेंगे, तो मैं भी जान दे दूंगी।"

पन्द्रहवां बयान।

जाति बाहर।

यह देखके बड़ा आनन्द हुआ, कि स्वामी देवताका मन मेरी मुट्ठीमें आ गया। मैंने मन ही मन कहा, कि अगर जल्लादको

तलवार चलानेसे पाप नहीं लगता; अगर हाथीको दांत चलानेसे पाप नहीं लगता; अगर शेरको पञ्जा मारनेसे पाप नहीं लगता, तो मुझे भी पाप न लगेगा। जगदीश्वरने जिसको जो अस्त्र दिया है; वह उसीको काममें लाता है। मेरे भी अस्त्र-प्रयोगका यही मौका था। मैं उनके पाससे उठके दूर बैठ गई। उनसे हंस-हंसके बातें करने लगी। वह जब मेरे पास आये, तब मैंने उनसे साफ-साफ कह दिया,—"मुझसे दूर ही रहियेगा; क्योंकि आपके मनमें एक बहुत ही बड़ी भूल समा गई है।" ऐसे समय न जाने कैसे मेरे सरका कपड़ा भी खिसक गया और मेरा जूड़ा भी खुल गया। मैंने उसे बांधते हुए कहा,—"आप भूलसे मुझे कुलटा समझते हैं; लेकिन मैं ऐसी नहीं हूं।"

शायद उन्हें मेरी इस बातका विश्वास हो गया। वह मेरे पास बैठ गये। मैंने हंसते-हंसते कहा,—"बस; अब मैं यहांसे जाती हूं।" इसके बाद मैं उन्हें बांकी चितवनसे देखती और अपनी साड़ी संभालती हुई उठनेपर तय्यार हुई।

मेरी यह तय्यारी देखके वह बेचारे घबरा गये। उन्होंने मेरा हाथ थाम लिया। लेकिन इसके बाद ही वह बड़े आश्चर्य्यसे मेरी यह गुलाबी हतेली देखने लगे। मैंने पूछा,—"क्या देखते हैं?"

वह। यह तुम्हारी हतेली है या गुलाबका खिला हुआ फूल? लेकिन गुलाबके फूलमें भी यह सुन्दरता कहां?

मैंने मुंह बिगाड़के अपना हाथ उनके हाथसे खींच लिया; इसके बाद हंसके कहा,—"तुम अच्छे आदमी मालूम नहीं होते। देखना,—फिर मुझे हाथ न लगाना। मैं कोई बाजारी कुलटा नहीं हूं।"

यह कहके मैं उठी और द्वारकी ओर चली। लिखते लज्जा आती है। मेरे चलते ही उन्होंने हाथ जोड़के मुझसे कहा,—"ज़रा

और बैठो; इसतरह न चली जाओ। तुम्हारे रूपने मुझे पागल बना दिया है। इसे जो भरके देख लेने दो। शायद ऐसा रूप अब कभी दिखाई न देगा।"

मैं लौटी; लेकिन बैठ न सकी। मैंने खड़े ही खड़े कहा,—"प्राणाधिक! मैं आप ही तुम्हें छोड़के जाया नहीं चाहती हूं। जाते हुए मेरा कलेजा फटा जाता है। लेकिन मैं क्या करूं? धर्म्म ही हम अबलाओंका प्रधान धन है। एक दिनके सुखके लिये मैं धर्म्म त्याग नहीं सकती। मैंने अज्ञाने आपको चिट्ठी लिखी; अज्ञाने ही यहां चली भी आई हूं। लेकिन अभीतक मेरा पतन नहीं हुआ है। अभीतक मेरे बचावकी राह खुली हुई है। अब मैं विदा होती हूं!"

उन्होंने कहा,—"तुम अपने धर्म्मका मर्म्म आप ही समझो। तुम्हें देखनेके बादसे मेरा सारा धर्म्म-अधर्म्म भाग गया है। मैं कसम खाके कहता हूं, कि तुम्हें सारे जीवन अपने हृदयके सिंहासनपर बैठा रखूंगा। एक दिनकी बात क्या कहती हो!"

मैं उनके पास बैठ गई। बोली,—"मर्दोंकी कसमका एतबार क्या? दमभरकी मुलाकातमें प्रेमकी यह बाढ़?" यह कहके फिर उठी और दरवाजेकी तरफ बढ़ी। अब उनका धीरज छूट गया। उन्होंने लपकके अपने दोनो हाथोंसे मेरे दोनो चरण पकड़ लिये और बोले,—"सारे संसारमें तुम्हारेजैसा कोई नहीं।" इसीके साथ-साथ उन्होंने एक लम्बी ठण्डी सांस ली। उनकी दशा देखके मुझे दुःख हुआ। मैंने कहा,—"तो मुझे अपने डेरेपर ले चलो। यहां रहनेपर तुम मुझे छोड़के चले जाओगे।"

वह फौरन राजी हो गये। डेरा पास ही था। उनकी गाड़ी नीचे खड़ी थी और दरवान सो रहे थे। हम दोनो चुपके-चुपके दरवाजा खोलके गाड़ीमें जा बैठे। उनका डेरा एक दुमञ्जिला

मकान था। दूसरी मञ्जिलकी एक कोठरीमें घुसके मैंने अन्दरसे किवाड़ बन्द कर लिये। स्वामीराम बाहर ही खड़े रह गये।

वह बाहर खड़े होके गिड़गिड़ाने लगे। मैंने हंसते-हंसते अन्दरसे कहा,—"मैं तुम्हारी दासी हुई; लेकिन देखना यह है, कि तुम्हारे प्रेमका यह ज़ोर कल सवेरेतक बना रहता है या नहीं। अगर यह बना रहेगा, तो कल सवेरे तुमसे बातें होंगी। अब मैं सोने जाती हूं!"

मैंने किवाड़ न खोले; लाचार उन्हें दूसरी कोठरीमें सोना पड़ा। ज्येष्ठ-बैशाखकी भयानक गर्मीमें तीन दिनके प्यासे रागीको जलाशयके पास बांध देनेसे जैसी उसकी दशा हो सकती है; वैसी ही दशा मेरे स्वामीकी हुई।

दूसरे दिन सवेरे कुछ दिन चढ़ जानेपर मैंने अपनी कोठरीके किवाड़ खोले; देखा स्वामी दरवाजेपर खड़े हैं। मैंने उनका हाथ अपने हाथमें लेके कहा,—"प्राणनाथ! या तो मुझे बाबू रामरामके मकान वापस भेज दो; नहीं तो आठ दिनोंतक मुझसे न बोलनेकी प्रतिज्ञा करो। इस एक अठवारेतक तुम्हारी परीक्षा होगी।" वह एक अठवारेकी परीक्षा देनेपर तय्यार हो गये।

सोलहवां बयान।

खूनपर फांसी।

मर्दोंके तड़पानेके जितने उपाय रचके विधाताने स्त्रियोंको बनाये हैं; उन सब उपायोंको काममें लाके एक अठवारेतक मैं अपने पतिको तड़पाती रही। मैं स्त्री हूं; अपनी जातिकी सारी हिकमतें कैसे जाहिर करदूं? अगर मैं आग लगाना न जानती होती, तो कल रातको उतनी आग न लगती। लेकिन मैंने जिस उपायसे

आग जलाई; जिस उपायसे उसे पढ़के झले और जिस उपायसे स्वामीको तड़पाया; उसका हाल लिखते हुए मुझे लज्जा आती है। अगर इस उपन्यासकी किसी पाठिकाने मर्दके खूनका बीड़ा उठाके कामयाबी पाई होगी, तो वह मेरी इस बातको अच्छी तरहसे समझ जायेगी। मेरे जो पाठक किसी जल्लादके फन्देमें फंस गये होंगे; वह भी इस बातको समझ सकेंगे। मेरा तो यही विश्वास है, कि स्त्रियां ही इस दुनियाका जञ्जाल हैं। दुनियामें मर्दोंसे उतनी बुराई पैदा नहीं होती; जितनी हम स्त्रियोंसे पैदा होती है। खैरियत इतनी ही है, कि ऐसी जान लेनेवाली विद्या हरेक स्त्रीको नहीं आती; आती होती, तो आज दुनियामें एक भी मर्द नजर न आता।

इस एक अठवारेतक मैं सदा स्वामीके साथ-साथ थी। उनका आदर किया करती थी; उनसे रसीली बातें किया करती थी। हंसी, मुस्कुराहट, टेढ़ी चितवन, अङ्ग मरोड़ना आदि—मामूली स्त्रियोंके अस्त्र हैं। मैंने उनसे पहले दिन बड़े आदरसे बातें कीं; दूसरे दिन अनुरागके लक्षण दिखाये; तीसरे दिन उनकी गृहस्थी करने लगी। अपने हाथों रच-रचके रसोई बनाने लगी; साथ ही उन्हें भोजन कराने लगी; उनके सोने, नहाने आदिके सुखका इन्त-जाम करने लगी। मतलब यह, कि वह सभी काम करने लगी, जिनसे उनकी देह और आत्मा शान्ति पाये। जलानेकी लकड़ी-तक आप ही काट-छांटके रखने लगी। उनके मनमें जरा भी बेचैनी पाती, तो सारी रात जागके बिता देती।

अब हाथ जोड़के आप लोगोंसे एक निवेदन है। वह यह, कि आपलोग मेरी इन सेवाओंको बनावटी सेवा न समझें। इन्दिराके मनमें इस बातका गर्व था, कि वह खाने-पहननेके लोभसे; या स्वामीके धनसे धनेश्वरी होनेके लोभसे यह सब सेवायें कर न

सकती थी । स्वामी पानेके लोभसे वह नकली प्रेम प्रकाश कर न सकती थी ; इन्द्रकी इन्द्रानी होनेके लोभसे भी वह ऐसा छल कर न सकती थी । वह स्वामीके लुभानेको रसीली चितवनोंके तीर चला सकती थी ; लेकिन उन्हें मोहित करनेके लिये नकली प्रेम दिखा न सकती थी । भगवान्‌ने वैसी मिट्टीसे इन्दिराको बनाया न था । जो अभागी मेरी यह बात समझ न सके ; जो मुई मुझे यह कहे,—"बांकी चितवनके तीर चला सकती हो ; ढंका हुआ सर खोल सकती हो ; मर्दको मतवाला बनानेके लिये बंधा हुआ जूड़ा खोलके फिर बांध सकती हो ; लेकिन स्वामीके पैर दबाती हुई या उनकी चिलम फूंकती हुई मरी जाती हो !" मैं चाहती हूं, कि वह कमबख्त मेरी यह जीवनी न पढ़े ।

तुम पांच तरहकी पांच स्त्रियां ; सुनो । मर्द पाठकोंसे मेरा कुछ कहना नहीं ; वह इस शास्त्रकी बातें समझ ही नहीं सकते । मैं तुम्हींको अन्दरकी बातें सुनाती हूं । वह मेरे स्वामी थे और स्वामीकी सेवा हीसे हम स्त्रियोंको बड़ा आनन्द आया करता है ; इसीलिये बनावटसे नहीं ; बल्कि सच्चे अन्तःकरणसे मैं उनकी सेवा किया करती थी । मैं सोचती थी, कि चार दिन बाद यदि वह मुझे छोड़ भी देंगे, तो मेरा क्या बिगड़ेगा । इस समय तो पृथिवीका सार सुख लूट लूं ; जी भरके अपने देवताकी पूजा कर लूं ; कौन जानता है, कि ऐसा अवसर फिर मिले या न मिले । इसलिये मैं बनावटसे नहीं ; बल्कि जी खोलके पति-सेवा कर रही थी । इस सेवासे मेरी आत्माको जो सुख मिला ; उसे तुममें कुछ स्त्रियां समझ सकेंगी और कुछ बिलकुल ही समझ न सकेंगी ।

मर्द पाठकोंको मैं सिर्फ रसीली चितवनका ही मर्म्म समझा दिया चाहती हूं । जो बुद्धि सिर्फ कालेजकी परीक्षाओंमें पास होने हीसे अपनेको धन्य मानती है ; जो बुद्धि वकालतसे दश-पांच

रुपये रोज बना लेने हीमें अपनेको विश्व-विजयिनी मानती है; जो बुद्धि राज-सम्मानको दुनियाका बहुत बड़ा सम्मान समझती है;— वह बुद्धि मेरे इस पति-भक्ति-तत्त्वको समझ न सकेगी। जो लोग विधवा-विवाहके लिये बावले हैं; जो लोग हिन्दू-स्त्रियोंको विलायती विद्यायें सिखाके काली मेम बनाया चाहते हैं; वह भी पति-भक्ति-तत्त्व समझ नहीं सकते। फिर भी; अपनी अपार दया-से रसीली चितवनका अर्थ इसलिये समझानेपर तय्यार हुई हूं, कि वह बहुत ही खुली हुई बात है। जैसे महावत अङ्कुशसे हाथी वश करता है; कोचवान चाबुकसे घोड़ोंको ठीक रखता है, गोपाल लाठीसे गौओंको ठिकाने रखता है; अङ्गरेज कानूनसे हिन्दुस्थानियोंको ठीक रखते हैं; उसीतरह हम अपनी रसीली चितवनसे तुम मर्दोंको काबूमें रखा करती हैं। हमारी पति-भक्ति ही हमारा गुण है। हमें अपनी रसीली चितवनके लिये कभी-कभी जो आफतमें फंसना पड़ता है, वह अपने दोषसे नहीं; तुम्हारे ही दोषसे।

तुमलोग कह सकते हो, कि मेरा इस बातमें बड़ा अभिमान भरा हुआ है। होगा!—लेकिन यह बात न भूलो, कि कभी-कभी हम आप ही अपने तीरोंका शिकार बन जाती हैं। हमें अपने अभिमानका फल हाथो-हाथ मिल जाया करता है। जिस देवताके अङ्ग नहीं; फिर भी धनुर्द्धारी हैं—जिसके मा-बाप नहीं; फिर भी स्त्री मौजूद है—जिसके पास फूलोंके तीर हैं, फिर भी उनसे पहाड़ तोड़े जा सकते हैं;—वही देवता हम स्त्रियोंका अभिमान तोड़ा करते हैं। मैंने अपनी रसीली चितवनके जालमें दूसरेको फंसा लिया; लेकिन खुद भी फंस गई। आग जलाके दूसरेको तड़पाया; लेकिन खुद भी तड़प गई। होलीमें अबीर खेलनेकी तरह—दूसरेको रंगनेमें आप ही प्रणयके रङ्गसे शराबोर हो गई। कही चुकी हूं, कि उनमें रूप है और वह रूप भी गजबका है—सितमका है।

इसके बाद इस तड़पने और तड़पानेका विषय लीजिये। मैं हंसना जानती थी; लेकिन क्या वह मेरी हंसीका जवाब देना न जानते थे? मैं उन्हें बांकी चितवनसे देख सकती थी; लेकिन वह भी क्या मुझे उसी चितवनसे देख न सकते थे? उनका मुख चूमनेकी आशासे मेरे होंट फूल सकते थे; लेकिन क्या इसी आशासे उनके भी होंट फूल न सकते थे? अगर मैं उनकी हंसी-में; चितवनमें; होंटोंमें यह लक्षण देखती, तो मेरी ही जय हो जाती! लेकिन ऐसा नहीं हुआ। मैंने उनकी हंसी, चितवन और होंटोंमें सिर्फ एक ही बात पाई,—अनन्त—असीम—प्रेम! इसीलिये मैं हार गई। हारके मुझे स्वीकार करना पड़ा, कि यहां जीवनका सोलहो आने सुख है। अच्छा ही हुआ, कि जो देवता मनमें तूफान बहाया करते थे; उनकी देह जल-भुनके खाक हो गई।

जैसे-जैसे वह अठवारा समाप्त होनेको आया; वैसे-वैसे मेरा मन उनमें और भी फंस गया। अन्तमें मुझे ऐसा ज्ञान पड़ा, कि अगर वह मुझे मारके भी भगाया चाहेंगे, तो भी मैं उन्हें छोड़के जा न सकूंगी। मेरा परिचय पानेपर अगर वह मुझे गणिकाकी तरह भी अपने पास रखा चाहेंगे, तो भी उनके पास ही रहूंगी; लोक-लाजके डरसे स्वामीको न छोड़ूंगी। लेकिन अगर मेरे इतना सहन करनेपर भी वह मुझे निकाल देंगे, तो मैं क्या करूंगी? इसी चिन्तासे कभी-कभी मैं रो दिया करती थी।

लेकिन यह बात मेरी समझमें आ गई, कि प्राणेशके पर कट गये हैं। अब उनमें उड़नेकी शक्ति नहीं। उनके अनुरागकी आगमें अपरिमित घी छोड़ा जा रहा था। वह बेचारे भी दुनियाका सारा काम-काज छोड़के सिर्फ मेरा मुंह देखा करते थे। मैं घम-घमके गृहस्थी किया करती थी; और वह बच्चोंकी तरह मेरे पीछे-पीछे घूमा करते थे। मुझे उनके मनमें कामनाओंका तूफान बहता हुआ

दिखाई दिया करता था; लेकिन वह मेरे जरासे इशारेपर रुक भी जाता था। कभी-कभी वह मेरे पैर पकड़के मानो मुझसे यह कहा करते थे, कि मुझे छोड़के कहीं चली न जाना। मुझे भी विश्वास हो गया, कि अगर मैं उन्हें छोड़ दूंगी, तो उनकी दशा बहुत ही खराब हो जायेगी। परीक्षा पूरी उतरी। अठवारा बीतनेसे पहले ही हम दोनो एक दूसरेसे बिना बोले-चाले एक दूसरेके अधीन हो गये। उन्होंने मुझे कुलटा समझ रखा था। कोई हर्ज नहीं। मस्त हाथीको जञ्जीरसे बांधनेकी बहादुरी मैंने ही दिखाई थी।

सत्रहवां बयान।

फांसीपर मुकद्दमा।

कलकत्तेमें हम कुछ दिनोंतक बड़े ही आरामसे रहे। इसके बाद एक दिन दिखाई दिया, कि स्वामी एक चिट्ठी हाथमें लिये मन मारे बैठे हुए हैं। मैंने पूछा,—"कुशल तो है?"

उन्होंने जवाब दिया,—"मकानसे चिट्ठी आई है। जाना पड़ेगा।

मेरे मुंहसे एकाएक निकल आया,—"तो मेरा क्या होगा?" यह कहके मैं वहीं जमीनपर बैठ गई। मेरी दोनो आंखोंसे झर-झर आंसू बहने लगे।"

उन्होंने बड़े प्रेमसे मेरा हाथ पकड़के मुझे उठाया और मुंह चूमके फर्शपर बैठाया। कहा—"इसी बातकी चिन्ता मैं भी कर रहा था। तुम्हें छोड़के मैं जा ही नहीं सकता।"

मैं। लेकिन वहां मेरा क्या परिचय दोगे? कहां और कैसे रखोगे?

वह। इसीकी चिन्ता तो मुझे भी है। शहर होता, तो बात और थी। कोई अच्छी जगह देखके तुम्हें ठहरा देता। लेकिन मा-बापके सामने तुम्हारे ठहरनेका क्या उपाय किया जाये!

मैं। और अगर न जाओ!

वह। तो रोजगारको ठेस पहुंचेगी!—बड़ा नुकसान होगा।

मैं। कबतक लौटना चाहते हो? अगर जल्द लौटो, तो मुझे यहीं कहीं छोड़ जाओ।

वह। जल्द लौटनेकी कोई भी आशा नहीं। बड़ी जरूरतसे ही मैं कलकत्ते आया करता हूं।

मैंने बहुत ही रोते-रोते कहा,—"तो तुम अकेले ही जाओ, मैं तुम्हारे बन्धनका कारण न बनूंगी। मेरे भाग्यमें जो कुछ लिखा है; उसे झेल लूंगी।"

वह। लेकिन मैं तुम्हें बिना देखे पागल हो जाऊंगा।

मैं। देखो; मैं तुम्हारी विवाही स्त्री नहीं हूं। (यह सुनके स्वामी महाशय जरा चौंक पड़े।) तुमपर मेरा कोई अधिकार नहीं। तुम मुझे इसी समय विदा—

उन्होंने मुझे इससे आगे कुछ कहने न दिया। कहा,—"नहीं; इस समय इन बातोंकी जरूरत नहीं। मुझे सोचनेका समय दो। मैं कल सवेरे अपना फैसला सुनाऊंगा।"

तीसरेपहर उन्होंने चिट्ठी लिखके रमण बाबूको बुलवाया; मैं किवाड़की आड़से उन दोनोंमें होती हुई बातें सुनने लगी। स्वामीने कहा,—"आपकी उन कम उम्रकी रसोईदारनका नाम क्या है?"

वह। कुमुदिनी!

स्वामी। कहांकी रहनेवाली हैं?

वह। इस समय बता नहीं सकता।

स्वामी। सधवा हैं या विधवा?
वह। सधवा!
स्वामी। उनके पतिको आप जानते हैं?
वह। जानता हूं!
स्वामी। वह कौन हैं?
वह। इस समय इसके भी बतानेका अधिकार नहीं।
स्वामी। क्या इसमें कोई भेद है?
वह। हां!
स्वामी। आपने उन्हें कहां पाया?
वह। मेरी स्त्री उन्हें अपनी मासीके पाससे ले आई थी।
स्वामी। खैर; इन फालतू बातोंकी जरूरत नहीं। उनका चरित्र है?
वह। बहुत ही अच्छा। मेरी बुड्ढी ब्राह्मणीको बहुत सताती थीं। सिवा इसके और कोई ऐब नहीं!
स्वामी। मैं स्त्रियोंके चरित्रका दोष पूछ रहा था!
वह। इतना अच्छा चरित्र मैंने अबतक देखा ही नहीं।
स्वामी। आप उनके मकानका पता क्यों नहीं बताते?
वह। कह चुका हूं, कि मुझे इसके बतानेका अधिकार नहीं
स्वामी। उनके स्वामीका मकान कहां है?
वह। इस सवालका भी वही जवाब है!
स्वामी। उनके स्वामी जीवित हैं?
वह। नहीं तो मैं उन्हें सधवा कैसे बताता?
स्वामी। आप उनके स्वामीको पहचानते हैं?
वह। पहचानता हूं!
स्वामी। वह रसोईदारिन इस समय कहां है?
वह। आपके इसी मकानमें!

यह सुनके स्वामी देवता चौंक पड़े। उन्होंने घबराके पूछा,—"आपने कैसे जाना?"

वह। यह बतानेका मुझे अधिकार नहीं। क्या आपकी जिरह समाप्त हुई?

स्वामी। समाप्त हुई। लेकिन आपने यह अबतक न पूछा, कि मैं आपसे यह सब बातें पूछता किसलिये था?

वह। दो कारणोंसे यह बात नहीं पूछी। पहला कारण यह है, कि मेरे पूछनेपर आप सच्चा जवाब न देते। क्यों ठीक है न?

स्वामी। और दूसरा कारण?

वह। दूसरा कारण यह है, कि मैं आपके इन सवालातकी वजह आप ही जानता हूं।

स्वामी। हैं;—यह भी जानते हैं? अच्छा बताइये, कि मैंने इतने सवाल किस लिये किये?

वह। मैं यह बता नहीं सकता।

स्वामी। अच्छा; जब आप सभी जानते हैं, तब यह भी बताइये, कि जो बात मैं किया चाहता हूं, वह पूरी होगी या नहीं?

वह। जरूर पूरी होगी। आप कुमुदिनीसे भी पूछ लीजियेगा।

स्वामी। और एक विनय है। आप कुमुदिनीके सम्बन्धमें जो बातें जानते हैं; क्या उन्हें लिखके उनपर अपने दस्तखत बना सकते हैं?

वह। बना सकता हूं; लेकिन एक शर्तसे। मैं अपनी उस लिखावटको लिफाफेमें बन्द कर दूंगा और कुमुदिनीको दे दूंगा। आप इस समय उसे देख न सकेंगे। देखना हो, तो देश लौटके देखियेगा। बोलिये; मञ्जूर?

मेरे स्वामीने खूब विचारके कहा,—“मञ्जूर! लेकिन इससे मेरा काम बन जायेगा न ?”

वह । जरूर बन जायेगा।

कुछ और बातोंके बाद रमण बाबू चले गये; पतिदेव मेरे पास आये।

मैंने पूछा,—“क्या इन बातोंकी बड़ी जरूरत थी ?”

उन्होंने पूछा,—“क्या तुमने सब बातें सुन लीं ?”

मैं । हां; सुन लीं । सोचती थी, कि मैं तो खून करनेपर फांसी चढ़ गई; अब मेरे मुकदमेकी जांचकी क्या जरूरत थी ?

वह । शायद ऐसा ही दुनियाका कानून है।

अट्ठारहवां बयान ।

भयानक मन्सूबा ।

उस दिन दिन-रात मेरे स्वामी चिन्ता ही करते रहे। मुझसे भी अधिक न बोले। मुझे सामने पाते ही मेरा मुंह देखने लगते थे। उनसे अधिक मैं ही चिन्तित थी; लेकिन उनकी परेशानी देखके मुझे बड़ी तकलीफ हुई। मैं अपना दुःख दबाके उन्हींको धीरज देने लगी। तरह-तरहके फूलोंकी मालायें; फूलोंके तोड़े, फूलोंके गुलदस्ते बनाके उन्हें उपहारमें दिये। तरह-तरहके पान बनाके दिये। रसोईमें कितनी ही तरहके सुखाद्य खाने बनाये। मैं स्वयं अन्दर ही अन्दर रो रही थी; लेकिन उनके हंसानेके लिये तरह-तरहकी हंसीकी कहानियां कहने लगी। मेरे स्वामी रोजगारी आदमी थे। सबसे अधिक रोजगारकी बातें पसन्द करते थे। मैं भी बड़े घरकी बेटी थी; रोजगारका मर्म्म कुछ समझती थी; इसलिये उनका जी बहलानेको रोजगारकी बातें करने लगी। लेकिन

किसी उपायसे फायदा न हुआ। मुझे रुलाईपर रुलाई आने लगी।

दूसरे दिन सवेरे नाश्ता कर चुकनेपर उन्होंने मुझे अपने पास बैठाके कहा,—"आशा है, कि मैं जो कुछ पूछूंगा; उसका ठीक-ठीक जवाब पाऊंगा।"

मैं। क्या पूछा चाहते हो?

वह। सुना, कि तुम्हारे स्वामी जीते हैं। उनका नाम-धाम क्या है?

मैं। अभी नहीं; कुछ दिनों बाद बता दूंगी।

वह। इन दिनों कहां है?

मैं। इसी कलकत्तेमें।

वह। (कुछ चौंकके) वह कलकत्तेमें हैं; तुम भी कलकत्तेमें हो। तो फिर तुम दोनो एक साथ क्यों नहीं रहते?

मैं। उनसे मेरा परिचय नहीं।

देखना, पाठक! मैं सब सच ही कह रही हूं। मेरे स्वामीने इस जवाबसे विस्मित होके कहा,—"क्या कहा,—परिचय नहीं? स्त्री-पुरुष एक दूसरेको नहीं पहचानते? ताज्जुब!"

मैं। इसमें ताज्जुबकी कौनसी बात है। क्या तुम्हीं अपनी खोई हुई स्त्रीको पहचान सकते हो?

इसपर उन्होंने जरा शर्माके कहा,—"यह तो भगवान्की लीला है। उन्हींकी इच्छासे ऐसा हुआ।"

मैं। भगवान्की लीला हर जगह दिखाई देती है।

वह। अच्छा; हटाओ यह झगड़ा। यह तो बताओ, कि कहीं वह मुझपर नालिश-वालिश तो न ठोंक देंगे?

मैं। यह मेरे इख्तियारकी बात है। पहले तो मुझे उनको अपना परिचय देना पड़ेगा। इसके बाद उनका फैसला होगा।

वह। तो अब मुनासिब यही है, कि मैं तुमसे खुलके बात-चीत करूं। इसमें शक नहीं, कि तुम जैसी रूपवती हो, वैसे ही बुद्धिमती भी हो। तुमसे सलाह लेनेमें कोई हर्ज नहीं।

मैं। कैसी सलाह?

वह। मुझे घर लौटना है।

मैं। पहले हीसे जानती हूं।

वह। घरसे जल्द लौटना कठिन है।

मैं। यह भी सुन ही चुकी हूं।

वह। तुम्हें यहां छोड़ नहीं सकता; क्योंकि बिना तुम्हारे मेरा जीना मुश्किल हो जायेगा।

छाती फटी जाती थी; फिर भी, मैंने देरतक हंसके कहा,—"क्या जहां कव्वे न होंगे, वहां सवेरा ही न होगा?"

वह। कोयलका दुःख कव्वेसे मिट नहीं सकता। मैं तुम्हें साथ ले जाऊंगा।

मैं। वहां कहां रखोगे?—क्या परिचय दोगे?

वह। बहुत बड़ा फरेब करूंगा। कल सारे दिन सोचके तय्यार किया है।

मैं। वहां जाके कहोगे, कि यही मेरी इन्दिरा है; बाबू राम-कृष्णके घर मिली है?

वह। (दङ्ग होके) उफ!—तुम कौन हो?

स्वामीनाथ सकतेमें आके मेरा मुंह देखते रह गये। मैंने पूछा,—"क्यों; क्या हुआ?"

वह। तुमने मेरी इन्दिराका नाम कैसे जान लिया? फिर; तुम्हें मेरे फरेब हीकी खबर कैसे लगी? कौन हो तुम? आदमी या मायाविनी?

मैं। इसका जवाब फिर कभी दूंगी। इस समय बदलेमें मैं भी जिरह किया चाहती हूं; ठीक-ठीक जवाब देना।

वह। (कुछ सहमके) पूछो !

मैं। उस दिन मेरे पूछनेपर तुमने जवाब दिया था, तुम्हारी स्त्री अगर मिल भी जायेगी, तो तुम उसे न रखोगे; उसे डाकू उठा ले गये थे; उसके रखनेसे तुम्हारी जाति बिगड़ जायेगी। मैं पूछती हूं, कि घर ले जाके अब जो तुम मुझे इन्दिरा बताओगे, तो तुम्हारी जाति कैसे स्थिर रहेगी ?

वह। इस बातपर अच्छी तरहसे विचार कर चुका हूं। बात यह है, कि स्त्रीके छोड़नेसे मेरी जान न जाती; लेकिन तुम्हें छोड़नेसे मेरी मौत हो जायेगी। अब मैं जातिको देखूं या प्राणको ? फिर; यह बात उतनी कठिन नहीं; जितनी दिखाई देती है। मेरे घर इन्दिराके जाति बाहर करनेकी चर्चा अभीतक किसीने भी नहीं चलाई है। काले तालमें इन्दिरापर जिन लोगोंने छापा मारा था; वह सब पकड़े गये थे। उन सबने अपना अपराध स्वीकार किया। यह भी कहा, कि उन सबने इन्दिराके कपड़े और जेवर उतारके उसे छोड़ दिया। इस समय मुश्किल इतनी ही है, कि इन्दिरा लापता है। वह मिल जाये, तो उसके सम्बन्धमें कोई कलङ्कशून्य कहानी अनायास ही गढ़ ली जा सकती है। आशा है, कि रमण बाबूकी लिखावटसे भी मुझे बहुत कुछ मदद मिल सकती है। इसपर भी अगर कोई झगड़ा खड़ा होगा, तो पञ्चोंकी पूजा करनेसे मिट जायेगा। घरमें रुपयेकी कमी नहीं और रुपयेसे टेढ़े काम भी सीधे हो जाते हैं।

मैं। जब इसतरह कुल झगड़ोंके मिट जानेका विश्वास है, तब फिर तुम इतनी चिन्ता क्यों करते हो ?

वह। चिन्ता तुम्हारे लिये है। समय पाके अगर यह बात खुल जाई, कि तुम नकली इन्दिरा हो, तो क्या होगा ?

मैं । तुम्हारे घरके लोग मुझे भी नहीं पहचानते; असली इन्दिराको भी नहीं पहचानते। क्योंकि उन लोगोंने असली इन्दिरा-को सिर्फ एकबार बचपनमें देखा होगा। इसलिये मेरे सम्बन्धमें इतनी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं।

वह । अगली-पिछली बातोंके निकलनेपर कलई खुल जायेगी। तुम पहचान ली जाओगी।

मैं । अगली-पिछली बातें तुम मुझे सिखा देना।

वह । मैं भी यही चाहता हूं; लेकिन सब बातोंका सिखाना कठिन है। जो बात सिखाना मैं भूल जाऊंगा; वही बात निक-लेगी और तुम्हारा भेद खुल जायेगा। फिर; असली इन्दिराके आनेपर जब लोग तुमसे और उससे पिछली बातें पूछेंगे; उस समय भी तुम पकड़ी जाओगी।

मैं कुछ हंसी। ऐसी दशामें हंसी आप ही आप आती है। फिर भी; अभीतक मेरे जाहिर होनेका समय आया न था। इसीलिये मैंने हंसके कहा,—"मुझे कोई भी नीचा दिखा न सकेगा। अभी-अभी तुमने मुझसे पूछा था, कि मैं आदमी हूं या मायाविनी। अब सुन लो, कि मैं आदमी नहीं हूं। (यह सुनके बेचारे कांप उठे।) मैं अपना परिचय बादको दूंगी। इस समय इतना ही कहे रखती हूं, कि मुझे कोई भी हरा न सकेगा।"

स्वामी देवता स्तम्भित हो गये। वह बुद्धिमान् और परिश्रमी आदमी थे। नहीं तो इतने थोड़े समयमें इतना रुपया कैसे कमा लेते? देखनेमें कुछ नीरस और कठोर थे, लेकिन अन्दरसे बड़े ही स्नेहशील थे। फिर भी; वह रमण बाबूकी तरह ऊंची शिक्षासे शिक्षित न थे। वह देवी-देवताओंके भक्त थे। बहुतेरे देश देखनेपर भी भूत,प्रेत, डाकिनी, योगिनी, मायाविनीको मानते थे। इसी समय उन्हें यह भी याद आ गया, कि वह मेरे रूपके जालमें किस-

तरह फंसे हुए थे। उन्हें मेरी असाधारण बुद्धिकी भी याद आ गई। ऐसी दशामें मेरे आदमी न होनेका उन्हें थोड़ासा विश्वास हो गया। वह कुछ देरतक स्तम्भित रहे। इसके बाद उन्होंने अपने बुद्धिबलसे इस विश्वासको अपने मनसे हटाके कहा,—"देखना है, कि तुम कैसी मायाविनी हो? क्या मैं तुमसे कुछ बातें पूछ सकता हूं?"

मैं। पूछो।

वह। मेरी स्त्रीका नाम तो तुम जानती ही हो। अब यह बताओ, कि उसके बापका क्या नाम है?

मैं। हरमोहन।

वह। उनका मकान?

मैं। महेशपुर।

वह। हैं?—तुम कौन हो?

मैं। पहले ही कह चुकी हूं, कि आदमी नहीं हूं। बाकी बातें फिर कभी कहूंगी।

वह। तुमने कहा था, कि तुम कालेतालकी रहनेवाली हो। वहांके बाशिन्दे इन सब बातोंको जान सकते हैं। अब यह बताओ, कि हरमोहन बाबूके महलका फाटक किस ओर है?

मैं। दक्षिण ओर। फाटककी दोनो ओर दो पत्थरके सिंह बने हुए हैं।

वह। उनके कितने बेटे हैं?

मैं। एक।

वह। नाम?

मैं। बसन्त।

वह। उसके कितनी बहनें हैं?

मैं । जिस समय तुम्हारा विवाह हुआ था; उस समय दो बहनें थीं ।

वह । उनके नाम ?

मैं । इन्दिरा और कामिनी ।

वह । क्या उनके महलके पास कोई तालाब भी है ?

मैं । है क्यों नहीं । बहुत बड़ा तालाब है । उसका नाम देवीलाल है । उसमें कमलकी भरमार रहती है ।

वह । मैंने भी देखे थे । जान पड़ता है, कि जिस समय मेरा विवाह हुआ था ; उस समय तुम महेशपुर हीमें थीं । इसीलिये तुम यह सब बातें जानती हो । अच्छा; अब कुछ पेचीली बातें पूछता हूं । इन्दिराका विवाह किस जगह हुआ था ?

मैं । पूजाकी दालानके उत्तर-पश्चिम कोनेमें ।

वह । कन्यादान किसने किया था ?

मैं । इन्दिराके ताया कृष्णमोहनने ।

वह । विवाहके बाद एक स्त्रीने मेरा कान मल दिया था । मैं उसका नाम जानता हूं । बताओ, वह कौन थी ?

मैं । इन्दिराकी सखी और मुंहबोली बहन,—राधा । बड़ी-बड़ी आंखें; रङ्गीन होंठ थे; सदा हंसा करती थी ।

वह । ओह ! जान पड़ता है, कि तुम विवाहके दिन वहां मौजूद थीं । तुम उनके कुटुम्बकी तो कोई नहीं हो ?

मैं । तो ऐसी बातें क्यों नहीं पूछते, जिन्हें उनके कुटुम्ब या मकानके लोग जानते ही न हों ।

वह । इन्दिराका विवाह कब हुआ था ?

मैं । संवत्——की वैशाख शुक्ला त्रयोदशीको ।

यह जवाब सुनके वह चुपचाप सोचते रहे । इसके बाद बोले,—"मैं और भी दो-चार सवाल किया चाहता हूं ।"

मैं । शौकसे !

वह । विवाहके बाद जब मैं इन्दिराके साथ एकान्तमें बैठा था; तब मैंने उससे क्या कहा था ?

इस सवालका जवाब देनेमें मुझे जरा देर लगी । कारण, उस बातकी याद आते ही मेरी आँखें भर आई थीं । मैं उन्हींको सँभाल रही थी । इसपर वह बोल उठे,—"अब तुम काबूमें आईं । अब खुल गया, कि तुम मायाविनी नहीं; आदमी हो ।" मैंने आँखोंका पानी आंखों हीसे पीके कहा,—"घबराओ नहीं । तुमने उस दिन इन्दिरासे पूछा था,—'बताओ तो सही; आजसे मेरा और तुम्हारा क्या नाता हुआ ?' इसपर इन्दिराने तुमसे कहा था,—'आजसे तुम मेरे देवता हुए और मैं तुम्हारी दासी हुई ।' यही तुम्हारे सवालका जवाब है । अब और क्या पूछा चाहते हो ?"

वह । अब तो तुमसे कुछ पूछते हुए डर मालूम होता है । मेरा सर चकरा रहा है । फिर भी; एक बात और है । मेरी विदासे पहले इन्दिराने मुझसे कौनसा मजाक किया था और मैंने उसे क्या सजा दी थी ?

मैं । तुमने अपने एक हाथसे इन्दिराका हाथ पकड़के और दूसरा हाथ उसके कन्धेपर रखके पूछा था,—'इन्दिरे! बताओ मैं तुम्हारा कौन हूं ?' इसपर इन्दिराने जवाब दिया था,—'तुम मेरी ननदके स्वामी हो !' इसपर तुमने पहले इन्दिराका गाल मल दिया । इससे जब वह कुछ दुःखी हुई, तब तुमने उसका मुंह चूम लिया था ।

यह कहते-कहते मेरा सारा शरीर आनन्दसे भर गया । कारण; वही मेरे जीवनका पहला चुम्बन था । इसके बाद सुभाषिणीकी वह सुधा-वृष्टि हुई । इस बीचमें बड़ा सूखा पड़ गया था। हृदय सूखके लकड़ी हो गया था ।

यह बात सोचते-सोचते जब मैंने निगाह उठाई, तो देखा, कि स्वामीने मसनद्पर सर रखके आंखें बन्द कर ली थीं। मैंने कहा,—"क्या और भी कुछ पूछना है?

उन्होंने कहा,—"नहीं। या तो तुम इन्दिरा हो; या सचमुच ही कोई मायाविनी।"

उन्नीसवां बयान।

विद्याधरी।

मैं चाहती, तो उसी समय अपना परिचय दे सकती थी। क्योंकि स्वयं स्वामीने अपने मुंहसे मेरा परिचय दे दिया था। लेकिन फिर मेरे मनमें आया, कि जबतक जरा भी सन्देह है; तबतक परिचय देना मुनासिब नहीं। इसीलिये मैंने कहा,—"अब मैं अपना परिचय देती हूं। मैं कामरूपकी रहनेवाली हूं। वहां आदिशक्तिके महामन्दिरमें उनकी बगलमें रहती थी। लोग हमें डाकिनी समझते हैं; किन्तु हम सब डाकिनी नहीं। हम विद्याधरियां हैं। मैंने महामायाका कोई अपराध किया था; इसीलिये उनका शाप पाके मनुष्यके रूपमें दिखाई देती हूं। शाप होके प्रभावसे मुझे रसोईदारन भी बनना पड़ा और यह कुलटाका पेशा भी करना पड़ा। जो भाग्यमें लिखा था; वह पूरा हुआ। अब मेरे शापसे छुटकारा पानेका समय आया है। मैंने जब जगन्माताको अपने स्तवसे प्रसन्न किया; तब उन्होंने आज्ञा दी, कि महाभैरवीका दर्शन करते ही तुम मेरे शापसे छूट जाओगी।"

उन्होंने पूछा,—"तुम्हारी वह महाभैरवी कहां है?"

मैंने कहा,—"महाभैरवीका मन्दिर महेशपुरमें है। तुम्हारी सुसरालके उत्तर। असलमें वह मन्दिर तुम्हारे सुसर हीका है। तुम्हारी सुसराल और उस मन्दिरके बीच फुलवारीसे राह है। अब मुझे यहांसे महेशपुर ही जाना है।"

उन्होंने सोचके जवाब दिया,—"जान पड़ता है, कि तुम मेरी इन्दिरा ही हो। कितना अच्छा हो, यदि कुमुदिनी इन्दिरा हो जाये। ऐसा हो, तो मेरे सुखकी सीमा न रहे।"

मैं। मैं कोई क्यों न हूं; जबतक महेशपुर न पहुंचूंगी, तबतक यह झगड़े न मिटेंगे।

वह। तो चलो; कल ही हमलोग यहांसे रवाना हो जायें। मैं तुम्हें काले तालके पार महेशपुरके पास पहुंचाके इस समय अपने मकान चला जाऊंगा। एक बात मैं हाथ जोड़के अभीसे कहे रखता हूं। तुम इन्दिरा हो या कुमुदिनी या मायाविनी या विद्याधरी: मुझे न छोड़ना।

मैं। ऐसा ही होगा। शापसे छुटकारा पानेपर भी मैं देवीकी कृपासे तुम्हें पा जाऊंगी। तुम मुझे प्राणसे भी अधिक प्यारे हो।

"वाह वा!—यह बात तो तुमने विद्याधरियोंजैसी नहीं; आदमीजैसी कही।" कहके वह नीचे मर्दानेमें चले गये। वहां कुछ आदमी उनसे मिलनेके लिये आ गये थे। ऐसे समय रमण बाबू भी आ गये। स्वामी आदमियोंको बिदा करनेपर रमणको लेके मेरे पास आये। उन्होंने मुझसे भी वैसे ही बातें कीं; जैसी मेरे स्वामीसे कर चुके थे। अन्तमें उन्होंने पूछा,—"सुभाषिणीसे भी कुछ कहलाना है?"

मैंने कहा,—"कह दीजियेगा; कल महेशपुर जानेकी तय्यारी है। वहां पहुंचते ही मैं शापसे छुटकारा पा जाऊंगी।"

स्वामीने रमण बाबूसे पूछा,—"क्या आपलोगोंको भी इनके शाप पानेकी खबर है?"

चतुर रमण बाबूने कहा,—"मुझे इन सब बातोंकी खबर नहीं; मेरी स्त्री सब कुछ जानती है।"

बाहर पहुंचनेपर स्वामीनाथने रमण बाबूसे पूछा,—"क्या आप डाकिनी, योगिनी, विद्याधरी आदि मानते हैं?"

रमण बाबूने रहस्य कुछ समझके कहा,—"मानता हूं। सुभाषिणीका विश्वास है, कि कुमुदिनी कोई शाप पाई हुई विद्याधरी है।"

स्वामीने कहा,—"जरा आप अपनी स्त्रीसे अच्छी तरह पूछियेगा, कि कहीं कुमुदिनी ही तो मेरी वह खोई हुई स्त्री नहीं?"

इसपर रमण बाबू वहां ठहर न सके। हंसते हुए चले गये।

बीसवां बयान।

विद्याधरी गायब।

दूसरे दिन हमलोग कलकत्तेसे रवाना हुए। वह मुझे काला ताल नामक वह अभागा जलाशय पार कराके अपने घरकी ओर गये?

साथके आदमियोंने मुझे महेशपुर पहुंचा दिया। पालकी, कहार और सिपाहियोंको गांवके बाहर छोड़के मैं पैदल महेशपुरमें घुसी। पिताका महल सामने पाके मैं एकान्तमें बैठके जी भरके रोई। इसके बाद महलमें घुसी। सामने ही पिताको पाके मैंने उन्हें प्रणाम किया। वह मुझे पहचानके आनन्दसे अधीर हुए। उनसे बहुतेरी बातें हुईं।"

मैंने यह न बताया, कि अबतक मैं कहां थी और कैसे थी पिता-माताके पूछनेपर सिर्फ इतना ही कह दिया,—"यह सब बातें बादको बताऊंगी।"

समय पाके मैंने मोटी-मोटी कुछ बातें उन्हें कह सुनाई; किन्तु विस्तारसे कोई भी बात न कही। इतना विस्तारसे कह दिया, कि अन्तमें मैं स्वामी हीके साथ रहती थी; स्वामी हीके पाससे आई हूं और वह भी दो-तीन दिनमें वहां आयेंगे। अन्दरकी बातें अपनी बहन कामिनीसे कह सुनाईं। कामिनी मुझसे दो साल छोटी थी। बड़ी ही हंसोड़ लड़की थी। उसने कहा,—"बहन! जीजाजी जब इतने बड़े गोबर-गणेश हैं, तो उनसे थोड़ासा मजाक क्यों न किया जाये?" मैंने कहा,—"इसमें हर्ज ही क्या है!" इसके बाद हम दोनों बहनोंने बैठके मन्सूबा बांधा। दूसरोंको भी सिखा-पढ़ाके पक्का किया। बाप-माको भी कुछ सिखाना-पढ़ाना पड़ा। कामिनीने उनसे कहा, कि बहनके स्वामीने उन्हें अभी ग्रहण नहीं किया है; यहीं करेंगे। उसीका बन्दोबस्त किया जा रहा है। फिर भी; उनसे कह दिया गया, कि दामादके आनेपर वह उन्हें मेरे आनेकी खबर न दें।

दूसरे ही दिन स्वामीनाथ आ पहुंचे। माता-पिताने उनका बड़ा आदर किया। मेरे आनेकी खबर उन्हें किसीने भी न दी। वह किसीसे पूछ भी न सके। वह जिस समय जनानखानेमें जल-पान करने बैठे, उस समय बहुत ही उदास थे।

जलपानके समय मैं उनके सामने न आई। कामिनी और उसकी दो-चार सखियोंने बैठके उन्हें जलपान कराया। जलपान समाप्त होनेके बाद ही सन्ध्या हुई। कामिनी उनसे तरह-तरहकी बातें पूछने लगी। मैं आड़से सुनने लगी। अन्तमें उन्होंने कामिनीसे पूछा,—"तुम्हारी बहन कहां है?"

कामिनीने एक लम्बी ठण्डी सांस भरके कहा,—"भगवान ही जानें कहां हैं। काले तालमें लुट जानेके बाद्से उनकी कोई खबर नहीं मिली।"

यह सुनके उनका चेहरा लकवा हो गया। देरतक उनके मुंहसे कोई बात न निकली। शायद वह यह समझे, कि कुमुदिनी भी हाथसे गई। अन्तमें उनकी दोनो आंखोंसे आंसू बहने लगे।

कुछ देर बाद आंखोंका पानी पोंछके उन्होंने पूछा,—"क्या कुमुदिनी नामकी कोई स्त्री यहां आई थी?"

कामिनीने कहा,—"कुमुदिनिको तो नहीं जानती; हां, एक स्त्री परसों पालकीकी सवारीसे यहां आई थी। उसने सीधे महा-भैरवीके मन्दिरमें जाके उन्हें प्रणाम किया। उसी समय एक अजीब बात हुई। एकाएक अंधेरा हो गया और आंधी-पानीका जोर दिखाई दिया। वह स्त्री हाथमें त्रिशूल लिये हुई जमीनसे आकाशकी ओर उड़ गई।"

प्राणनाथ दङ्ग रह गये। पान खाना भूलके हाथपर सर रखके बैठ गये। बहुत देरतक इसीतरह बैठे रहनेके बाद उन्होंने कहा,—"जिस स्थानसे कुमुदिनी गायब हुई, क्या उसे मैं भी देखसकता हूं?"

कामिनीने कहा,—"यह कौन बड़ी बात है। लेकिन इस समय अंधेरा हो गया है। जरा रोशनी ले आऊं!"

इतना कहके वह उठी और मुझसे कह गई,—"पहले तू जा। मैं रोशनीके साथ जीजाजीको लेके आती हूं।"

मैं पहलेसे जाके मन्दिरके आगेके मण्डपमें बैठी रही। यह मैं पहले ही कह चुकी हूं, कि हमारी फुलवारीके अन्दरसे मन्दिरतक पहुंचनेकी राह थी।

कुछ ही देर बाद हाथमें रोशनी और साथमें मेरे स्वामीको लेके कामिनी भी वहां पहुंची। स्वामी मुझे देखते ही मेरे पैरोंपर

धड़ामसे गिरे। गिड़गिड़ाके बोले,—"कुमुदिनी!—प्यारी कुमुदिनी! जब तुम लौटके आई ही हो, तो अब मुझे न छोड़ना।"

बार-बार उनकी ऐसी ही गिड़गिड़ाट सुनके कामिनीने झल्लाके कहा,—"आ बहन! चलो आ यहांसे। जीजाजी कुमुदिनीको पहचानते हैं; तुम्हें बिल्कुल ही भूल गये।"

यह कहके दुष्टा कामिनी रोशनी बुझाके और मुझे खींचके वहांसे ले भागी। हमारे भागनेपर पहले तो वह चकराये; संभलते ही हमारे पीछे-पीछे दौड़े। अजानी राहमें अंधेरा छाया हुआ था। बेचारे ठोकर खाके जोरसे गिरे। हम दोनो पास ही थीं; झपटके उनके पास पहुंची। एक भुजा पकड़के कामिनीने और दूसरी भुजा पकड़के मैंने उन्हें जमीनसे उठाया। कामिनीने धीरे-धीरे कहा,—"हम दोनो विद्याधरियां हैं। तुम्हारी रक्षाके लिये तुम्हारे साथ-साथ हैं।"

यह कहके हम दोनों उन्हें खींच-तानके उस कोठरीमें लाईं, जिसमें मैं सोया करती थी। वहां रोशनी थी। उन्होंने हम दोनोंको पहचानके कहा,—"हैं!—यह क्या? कामिनी और कुमुदिनी!" कामिनीने झुंझलाके कहा,—"वाह!—क्या अक्ल है तुम्हारी! तुमने कमसरियटका काम कैसे चलाया होगा? क्या वहां कुदाल चलाते थे; या घास छीलते थे? अरे यह कुमुदिनी नहीं; इन्दिरा है—इन्दिरा। तुम्हारी स्त्री। तुम अपनी स्त्रीको भी नहीं पहचानते?"

यह सुनके स्वामीनाथ मारे आनन्दके पागल हो गये। उन्होंने दौड़के मुझे गोदमें उठानेके बदले कामिनी हीको गोदमें उठा लिया। वह उनके गालपर एक तमांचा जड़के हंसती हुई भाग गई।

उस दिनके आनन्दका हाल लिखा जा नहीं सकता। महलमें उत्सव होने लगा। उसी रातको कामिनी और मेरे स्वामीके बीच कमसे कम एक सौ बार गर्म्मागर्म्म बातें हुईं। हर बार हार प्राणनाथ हीकी हुई।

इक्कीसवां बयान।

पहलेकी तरह।

काले तालके डाकेके बाद मुझपर जो कुछ बीती थी; वह सब स्वामी महाशयने भी अब सुन लिया। रमण बाबू और सुभाषिणीकी साजिशसे वह जिसतरह कलकत्ते बुलाये गये थे; उसका हाल भी उन्हें मालूम हुआ। मालूम होनेपर कुछ नाराज भी हुए। बोले,—"मुझे इतना परेशान करनेकी जरूरत क्या थी?" इसपर मैंने उन्हें जरूरत समझाई। वह समझ गये; लेकिन कमबख्त कामिनी न समझी। उसने कहा,—"बहनसे बड़ी बेवकूफी हुई। मैं होती, तो तुम्हें किसी तेल पेरनेवाले तेलीके हाथ बेच देती। तिसपर मिजाजका यह हाल; जमीनपर पैर ही नहीं रखते हो। अरे भाई; जब हम स्त्रियोंके रङ्गीन तलवे बिना चाटे तुम्हारी गति ही नहीं हो सकती, तो इतनी शेखी किसलिये दिखाते हो?"

स्वामीनाथ इस बार चुपचाप बैठे न रहे। आपने जवाब दिया,—"उस समय मैं तुम्हारी बहनको पहचान ही न सका था। सच तो यह है, कि तुम स्त्रियोंको पहचानना टेढ़ी खीर है।"

कामिनीने कहा,—"जीजाजी! विधाताने तुम्हें स्त्रियोंके पहचाननेके लिये गढ़ा ही नहीं। क्या नहीं सुना?—

आदमीयत और शै है, इल्म है कुछ और चीज।
लाख तोतेको पढ़ाया, पर वह हैवां ही रहा॥

मैं मुस्कुराने लगी। स्वामीने झेपके कामिनीसे कहा,—"बस, माफ करो, देवी! जलेपर जियादा नमक न छिड़को। लो! दो बीड़े पान देता हूँ; यहांसे दफान होनेकी मेहरबानी दिखाओ!"

कामिनीने कहा,—"आज मालूम हुआ, बहन! कि जीजाजी निरे बछियाके ताऊ नहीं; किसी कदर बुद्धिमान् भी हैं।"

मैं। कैसे?

का०। पानके बदले आप मुझे दो इलायचियां दे रहे हैं। तू कभी-कभी इनसे अपने पैर दबवा लिया कर, तो इनके हाथोंमें भी ताकत आ जायेगी और माथा भी मजबूत हो जायेगा।

मैं। क्या बकती है, ऊल-जलूल? भला मैं इन्हें अपने पैरोंको हाथ लगाने दे सकती हूँ। भूल गई, कि यही मेरे सर्वस्व हैं,—यही मेरे देवता हैं?

का०। मुझे क्या खबर थी, कि जीजाजी आदमीसे साक्षात् देवता बन गये हैं। लेकिन अगर यह तुम्हारे देवता ही हैं, तो अबतक देवता नहीं; शायद उप-देवता बने हुए थे।

मैं। जबसे उनकी विद्याधरी उड़नछू हुई है; तभीसे वह देवता हो गये हैं।

का०। हाय! बेचारे इतनी मिहनतसे विद्याधरी धरने चले थे; लेकिन धर न सके, विद्याधरी उड़ ही गई। जीजाजी! अब कभी भूले भी विद्याधरीके धरनेकी कोशिश न करना। विद्याधरीको आयत्त करना हँसी-खेल न समझो! चोरी और बात है।

मैं। कामिनी ! तू तो बेतरह सर चढ़ी जाती है। भला हंसी-मजाकमें चोरी-चमारीका क्या जिक्र ?

का०। मेरा क्या अपराध ? चोरी तो यह सदासे करते आये हैं। कमसरियटके काममें इन्होंने सीखी होगी। रह गई चमारी। फौजके लिये रसद जमा करते समय वह भी कर चुके होंगे।

स्वामीनाथने कहा,—"लड़की है; मनमानी बके जाती है। अमृत बालभाषितं।"

कामिनी। वाह जीजाजी! संस्कृत छांटने लगे। तो लो सुनो,—तुम जब विद्याधरीको रोदतं; तब तुम्हारी बुद्धि चन-चकरं। अब मैं जातीम्; क्योंकि माताजी बुलातीम्।

सचमुच ही माताजी कामिनीको नीचे बुला रही थीं। उसने नीचेसे वापस आके कहा,—"जानतां, कि माताजी किसलिये बुलायां। दो दिन और यहां रहतां; अगर न रहतां तो जबर्दस्ती रखतां।"

हम दोनो एक दूसरेका मुह देखने लगे।

कामिनीने कहा,—"हैं!—तुम दोनो आपसमें क्या देखतां?"

स्वामीने कहा,—"विचार करतां।"

कामिनीने छूटते ही कहा,—"विचार करना हो, तो घर लौटके करतां; अभी दो दिन यहीं रहतां। रहके हंसनां; बोलनां; हिलनां; डोलनां; गानां; नाचनां।"

उन्होंने कहा,—"नाचना जानती हो, कामिनी!"

कामिनी। छुरा! मैं क्यों नाचूं? मैंने नकेल तय्यार कर रखी है। तुम्हें नचाऊंगी।

स्वामी। मुझे तो मेरे आनेके बाद हीसे नचा रही हो। बहुत नाच चुका। अब जरा तुम नाचो!

कामिनी। तो दो दिनके लिये ठहर जाओगे?

स्वामी। जरूर!

कामिनीका नाच देखनेके लिये नहीं; बल्कि मेरे पिता-माताके कहने-सुननेसे स्वामीनाथ और एक दिनके लिये ठहर जानेपर तय्यार हुए। वह दिन भी बड़े ही आनन्दसे कटा। सन्ध्याके बाद घर-बाहरकी कोई सौ-सवा-सौ स्त्रियां महलमें जमा हुईं। एक सजे हुए दालानमें उनकी मजलिस बैठी। मेरे पतिदेव वहां बुलवाये गये। हिन्दू महिला-मण्डलने उन्हें घेर लिया।

स्त्रियोंका समुद्र कल-कल नाद करने लगा। कितनी ही बड़ी; छोटी और मझोली आंखें स्वामीकी ओर टकटकी लगाके स्वच्छ सरोवरकी मछलीकी तरह खेलने लगीं। कितनी ही काली-काली; फंदा मारे हुई; फन उठाये हुई जुल्फें वर्षाकालके वनकी लताओंकी तरह घूमने, फिरने और सिमटने-फैलने लगीं। जान पड़ता था, कि कालियदमनमें कालनागिनियोंके दल डरके यमुना-जलमें भागते फिरते थे। कितने ही कर्णफूल; झुमके; झूमर; इयरिङ्ग—मेघकी बिजलीकी तरह—घने काले बालोंके अन्दरसे चमकने लगे। रङ्गीन होंठ और चमकीले दांतोंकी पंक्तियां पान चबाती हुई; तरह-तरहके खेल दिखाने लगीं।

महिला-मण्डलने ढोल-मंजीरेके साथ गाना शुरू किया। इस गानेमें जो निर्लज्ज बातें कही जाती हैं; उनके कहनेकी जरूरत नहीं। इसीलिये जैसे ही गाना आरम्भ हुआ; वैसे ही मैं और कामिनी दोनों वहांसे खिसक गईं। एक खिड़कीसे झांक-झांकके दालानके अन्दरका तमाशा देखने लगीं। लोग पूछ सकते हैं, कि जिस गानेको तुम सुन नहीं सकीं; भाग गईं; उस गानेका हाल लिखनेकी क्या जरूरत थी? इसका जवाब यह है, कि अगर मैं इस महिलामजलिस और उसके इस गानेका हाल न लिखती, तो

हिन्दुओंके अन्तःपुरकी कु-प्रथाओंका चित्र कैसे खींचती ? मर्दोंको यह कैसे दिखा सकती, कि तुम्हारे जनानखानेमें क्या हुआ करता है ?

पड़ोसकी यमुना देवी मानो सभापत्नी बनी हुई थीं। उन्होंने गालियोंके गानेका श्रीगणेश किया था और उन्हींकी आवाज उन सौ-सवा-सौ स्त्रियोंकी आवाजोंके ऊपर छाई हुई थी। यमुनाकी उम्र कोई पैंतालीस सालकी होगी। रङ्ग काला; आँखें छोटी-छोटी; होंठ पतले—लेकिन रससे भरे हुए थे। जेवर और कपड़े-की भरमार थी। बड़ी ही कीमती साड़ी थी। तिसपर पैरमें पाजेब; हाथमें जड़ाऊ कड़े; इत्यादि। उनका आकार-प्रकार देखके मह-ल्लेकी लड़कियां उन्हें 'भैंस' इत्यादि कह दिया करती थीं।

गालियां सुनते-सुनते अन्तमें स्वामी महाशयकी हिम्मत छूट गई। वह बेचारे स्त्रियोंकी मजलिससे उठके बगटुट भागे। स्त्रियोंने बड़ा शोर किया। कितनी ही स्त्रियां उनके पीछे झपटीं। लेकिन उन्होंने अपनी सोनेकी कोठरीमें पहुंचके चट-पट अन्दरसे किवाड़ बन्द कर लिये।

इसतरह वह स्त्रियोंके हाथसे छुटकारा पा गये। उनके लिये जो हल्दी, अबीर, रङ्ग, गोबर, पिसा हुआ कोयला इत्यादि-इत्यादि रखे हुए थे; उनसे उनका बचाव हो गया। लेकिन गालियोंसे बचाव न हुआ। स्त्रियोंने सारी रात जागके उन्हें हजारों तरहकी गालियां सुनाईं।

बाईसवां बयान।

उपसंहार।

दूसरे दिन मैं पालकीकी सवारीसे अपने स्वामीके साथ ससुराल गई। स्वामीके साथ रहनेसे सुख भी था; सन्तोष भी था;—लेकिन

पहले बार सुसराल जाते समय मनमें जो उमङ्ग थी; वह इस बारकी यात्रामें न थी। पहले जा रही थी; उस चीजको पानेके लिये, जिसे कभी पा न सकी थी;—अब जाती थी, मिली हुई चीजको आंचलसे बांध रखनेके लिये। पहली यात्रा कवि-काव्य थी,—यह दूसरी यात्रा धनीका धन हो गई थी। क्या धनीका धन भी कभी काव्यकी बराबरी कर सकता है? जो लोग धन कमाते-कमाते बुड्ढे हो चुके हैं; काव्य खो चुके हैं; वह भी यही बात कहते हैं। उनका कहना है, कि फूल जबतक डालपर रहता है, तभीतक सुन्दर दिखाई देता है; तोड़ते ही उसकी वह सुन्दरता जाती रहती है। सपनेसे जितना सुख मिलता है; उसके सत्य हो जानेसे उतना सुख नहीं मिलता। असलमें आकाश नीला नहीं; लेकिन हमें नीला दिखाई देता है—इसीतरह धनमें भी सुख नहीं; सिर्फ देखनेवालोंको उसमें सुख दिखाई देता है। धनमें कोई सुख नहीं; हम आप ही उसे सुखका सामान समझ लिया करते हैं। सच्चा सुख काव्यमें है। क्योंकि काव्य आशा है और धन भोग-मात्र। वह भी सबके लिये नहीं। बहुतेरे धनी धनका पहरा देनेमें ही अपना जीवन समाप्त कर दिया करते हैं।

फिर भी; मैं सुखके साथ सुसराल चली। इस बार वहां निर्विघ्न जा पहुंची। स्वामी महाशयने अपने माता-पितासे सारा हाल विशेष रूपसे कह सुनाया। इसके बाद रमण बाबूका वह लिफाफेमें बन्द कागज खोला गया। उनकी लिखावटसे मेरी सारी बातें मिल गईं। मेरे सास-सुसरको सन्तोष हो गया। समाज भी सारी बातें जाननेपर कुछ न बोला।

मैंने यह सारा माजरा सुभाषिणीको चिट्ठीमें लिख भेजा। सुभाषिणी सदा मेरे मनमें बसी रहती थी। मैंने स्वामीसे कह-सुनके गोविन्दीके नाम इनामके पांच सौ रुपये भिजवा दिये। सुभाषिणीने

अपने पतिसे लिखवाके जवाब भिजवाया। जवाब क्या था; आनन्दका लहराता हुआ सरोवर था। जवाबमें सभी बातें थीं। कुछ बातोंकी बानगी देखिये। जवाबमें एक जगह लिखा था,—"पहले गोविन्दी रुपये लेती ही न थी। बोली,—'मेरा लोभ बढ़ जायेगा। इत्तफाकसे यह काम भला निकल आया; लेकिन ऐसे काम अधिकतर खराब ही हुआ करते हैं। मैं लोभमें पड़ूंगी, तो बहुतेरे खराब काम किया करूंगी।' इसपर मैंने कम्बख्तको समझाया, कि तेरा कोई कुसूर नहीं; अगर मैंने तेरी पीठपर एकाध झाड़ न जड़ी होती, तो तू यह काम हर्गिज न करती। तूने भलाई की थी; इसलिये यह इनाम ले। इसतरह बहुत समझाने-बुझानेपर उसने रुपये ले लिये। इसके बाद ही उसने तीर्थ-यात्रा और पूजा आदिकी एक फिहरिस्त तय्यार कराई है। जबतक तुम्हारी चिट्ठी नहीं आई थी, तबतक उसको हंसी भागी हुई थी। तुम्हारी चिट्ठी सुननेके बाद हीसे पाजीकी हंसीसे सारा मकान परेशान है।"

रसोईदारन ब्राह्मणीके सम्बन्धमें सुभाषिणीने लिखवाया था,—"जब तुम अपने स्वामीके साथ यहांसे चली गईं; तब बुड्ढी खूब बलबलाई। लोगोंसे कहती फिरी,—'अरे मैं आदमीके रुखसे उसका चरित्र पहचान सकती हूं। उसकी सूरत देखते ही मैं उसके सारे लच्छन समझ गई थी। तुम सबसे दुहाई दी, कि ऐसी हरजाईको यहां ठहरने न दो; लेकिन ग़रीब ब्राह्मणीकी बात किसीने सुनी ही नहीं। जिसे देखो वही कुमुदिनी-कुमुदिनी किया करता था। अब देखो, कुमुदिनीका तमाशा!' इसके बाद जब उसे खबर मिली, कि तुम अपने स्वामीके साथ गई हो और बहुत बड़े घरकी बहू हो; तब वह लोगोंसे कहा करती है,—'मैं तो पहले हीसे कहती आती हूं, कि बड़े घरकी बेटी और बहू है; भला ऐसा सुभाव कहीं छोटे घरकी स्त्रियोंका हो सकता है? अहा!—

कितना अच्छा रूप है; मानो साक्षात् लक्ष्मी हो। भगवान् उसे सदा सुखी रखें। बहुजी! चिट्ठी लिखना, तो मेरी असीस जरूर लिखना और यह भी लिखना, कि क्या मुझ दुखिया ब्राह्मणीको वह बिल्कुल ही भूल गई।"

घरकी मालिका उर्फ रोशनाईकी बोतलके सम्बन्धमें सुभाषिणीने लिखवाया था,—"अम्माने तुम्हारा हाल सुनके बड़ी खुशी दिखाई; साथ ही मेरा और मुन्नीके बापका थोड़ासा तिरस्कार भी किया। कहने लगीं, कि जब इतने बड़े घरकी बेटी और बहू थी; तब तुमने मुझे पहले ही खबर क्यों न दे दी। मैं उसे बड़े आराममें रखती। उन्होंने तुम्हारी स्वामीकी थोड़ीसी निन्दा भी की है। कहा है, कि माना वह उनकी स्त्री ही थी; लेकिन जब उसने मेरे यहां काम शुरू कर दिया था, तब वह उसे यहांसे क्यों ले गये?"

मालिकके सम्बन्धमें सुभाषिणीने चार पंक्तियोंमें अपने हाथों लिखा था,—"तुम्हारा सब हाल मालूम कर लेनेपर मेरे ससुरको हंसी सूझी। उन्होंने जरा तेवर बदलके मालिकासे कहा,—'ऐसी खूबसूरत रसोईदारन थी; तुमने हजार बहाने निकालके आखिर उसे निकलवा हीके दम लिया।' इसपर मालिकाने कहा,—'आग लगाऊं उसकी खूबसूरतीको। उसकी खूबसूरती तुम्हारे किस कामकी?' इसपर मालिकने कहा,—'जब वह चली ही गई है, तब मैं अपने कामका क्या हाल बताऊं?' मालिका उसी घड़ी जाके पलङ्गपर लेट गईं। सारे दिन उन्होंने पलङ्गके नीचे पैर न रखा। वह इस मजाकको समझ ही न सकीं।"

यह जवाब पानेके बाद ही मैंने ब्राह्मणी और दूसरे नौकरोंके लिये भी कुछ रुपये भिजवा दिये।

इसके बाद मैं लकसे जाके सुभाषिणीसे मिली। मुन्नीके विवाह-कर स्वामी मुझे लेके कलकत्ते पहुंचे। मैंने मुन्नीको नये-नये गहनोंसे लाद दिया; मालिकाको भी कितनी ही चीजें उपहारमें दीं। जो जिस लायक था, उसे वैसी ही चीजें देके सन्तुष्ट किया। फिर भी, मालिका मुझपर और मेरे पतिपर नाराज ही दिखाई दीं। उन्होंने बातों-बातोंमें कितनी ही बार कहा, कि मेरे लड़केकी खुराक बहुत घट गई है। मैं हर रोज रमण बाबूके लिये दो-चार चीजें बना दिया करती थी। मुन्नीका विवाह हो जानेपर मैं अपने घर लौट आई और फिर कभी कलकत्ते न गई। रसोई बनानेके डरसे नहीं, बल्कि रोशनाईकी बोतलकी नाराजगीके डरसे!

मालिका और बाबू रामदत्त दोनोंके स्वर्गवासको बहुत दिन हुए। फिर भी; कलकत्ते जाना न हुआ। मैं सुभाषिणीको भूली नहीं हूं; कभी भूलूंगी भी नहीं। इस संसारमें सुभाषिणी अपने जोड़की आप ही है!

इति शुभम्।

अङ्गरेजी, फ्रांसीसी, रूसी आदि युरोपीय तथा
मेरिकन नावेलोंका सचित्र हिन्दी अनुवाद निकालनेवाले

हिन्दी नावेल मासिक पत्रके नियम।

-'हिन्दी नावेल'का हरेक अङ्क हर अङ्गरेजी महीनेके पहले अठवारेतक निकाला जाके अपने ग्राहकोंके पास भेजा जाता है।

-हर अङ्क कोई एक सौ पृष्ठोंका। सालभरमें बारह सौ पृष्ठोंका पोथा। फिर भी; सालाना मय डाक-महसूल सिर्फ तीन रुपये।

-हर अङ्क खूब जांचके भेजा जाता है। किसी महीनेका अङ्क न मिलनेकी सूचना उसी महीनेकी २० वींतक भेजना चाहिये।

-हर अङ्कमें कोई पूरा नावेल या उसका कोई भाग होता है। हर नावेलका विषय न्यारा, जैसे—सामाजिक भौगोलक, वैज्ञानिक इत्यादि।

-महीने-दो-महीनेके लिये पता बदलवाना हो, तो अपने डाकखानेको ही लिखना चाहिये। जवाबके लिये जवाबी कार्ड या)॥ का टिकट भेजना चाहिये। अपना ग्राहक-नम्बर जरूर लिखना चाहिये।

-नमूना देखना हो, तो कोई सवा दो सौ पृष्ठोंका 'हीरेकी कनि' उपन्यास मंगाना चाहिये। दाम आठ आने। महसूल एक आना।